महाभारत।

की

समालोचना। तृतीयभाग

जय इतिहास।

लेखक तथा प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

द्वितीयवार

संवत् १९८४, शक १८४९, सन १९२७

विजय की प्राप्ति।

विजय की प्राप्ति करने की इच्छा हरएक के अंतःकरण में होती है, परंतु बहुत थोडे लोग जानते हैं, कि विजय प्राप्तिकी संभावना मनुष्यके मनकी अवस्थापर निर्भर है।

विजय प्राप्तिके लिये जिस प्रकार का मन होना आवश्यक है, उस प्रकारका मन बनानेके लिये ही महाभारत लेखक ने यह " जय इतिहास " लिखा है। यह इतिहास इतना उत्साहमय है कि यदि यह इतिहास मनुष्य पढेगा और इसके उपदेशका मनन करेगा, तो निःसंदेह वह मनुष्य उत्साहकी मूर्ति बन जायगा। निराशावादका अंश भी इसके पढनेके पश्चात् मनुष्यके मनमें रह नहीं सकता।

धर्मराज को अल्पसंतुष्ट न रहते हुए, अपने संपूर्ण शत्रुओंका पूर्ण नाश करके अपना संपूर्ण राज्य पुनः प्राप्त करने की प्रेरणा करने के लिये ही यह इतिहास भगवती माता कुंती देवीने कहा है और धर्मराजपर उसका अच्छा परिणाम भी हुआ है।

यहां माताका भी कर्तव्य स्पष्ट हो जाता है, कि यदि उनके कोई पुत्र या पुत्री निरुत्साहित हों, तो उनको पुनः उत्साहित करके अधिक प्रयत्न करनेके लिये प्रेरित करना। श्री छत्रपति शिवाजी महाराजकी माता जिजाबाईजी का चारित्र इसी प्रकार ओजस्वी था और उनकी प्रेरणा से श्री शिवाजी महाराज को जो जो अमोल ओजस्वी उपदेश मिलता था वह अपूर्वही था। इसी प्रकार श्री० विदुलादेवी का उपदेश इस जय इतिहासमें है।

स्वयं महाभारतके लेखक प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि यह इतिहास पढनेसे ये लाभ होंगे-" यह इतिहास विजय चाहनेवाले राजाको अवश्यपढना योग्य है, निरुत्साहित और शत्रुसे पीडित राजाको यह पढना या सुनना योग्य है। क्योंकि इसके पढनेसे निरुत्साहित राजा ऐसा ओजस्वी बनता है, कि वह अपने संपूर्ण शत्रुओंको पराजित करके संपूर्ण पृथ्वीका राज्य प्राप्त कर सकता है। यदि गर्भवती अवस्थामें स्त्री इसको सुनेगी तो उसके गर्भसे पुत्र या पुत्री जो भी उत्पन्न होगा वह तेजस्वी होगा, इसमें कोई संदेह ही नहीं है। यदि अपना संतान विद्वान, उदार, तपस्वी, उत्साही, तेजस्वी, बलवान, वीर, शूर, धैर्यशाली, विजयी, अपराजित, सज्जनोंका रक्षक तथा दुष्टोंका शमन करनेवाला इत्यादि गुणोंसे युक्त बन जाय, ऐसी इच्छा है, तो पतिपत्नीको यह इतिहास वारंवार पढना चाहिये।" हमें विश्वास है कि निःसंदेह ऐसा होगा। इसीलिये यह इतिहास हम पाठकोंके सन्मुख रख रहे हैं। आशा है कि इसके पढनेसे हमारे देशमें वीरता बढेगी और हमारा देश वीरोंका देश बनेगा।

" संपादक "

ॐ

[महाभारत के अन्तर्गत विदुला का उपदेश।]

जय इतिहास।

प्रथम भाग

कुन्त्युवाच।

अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परन्तप ॥ १ ॥
ततः श्रेयश्च भूयश्च यथावद्वक्तुमर्हसि।

अन्वयः– कुन्ती उवाच- हे परन्तप! विदुलायाः च पुत्रस्य च संवादं इमं पुरातनं इतिहासं अत्राऽपि उदाहरन्ति ॥ १ ॥ ततः यथावत् भूयः श्रेयः वक्तुं अर्हसि।

अर्थ–कुंती बोली, हे श्रेष्ठ तप करनेवाले! विदुलाका और उसके पुत्रका संवाद, यह पुरातन इतिहास, यहां उदाहरण के लिये लेते हैं ॥१॥ यह सुनकर और अधिक कल्याण कारक वचन तुम कह सकते हैं।

यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥ २ ॥
क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३ ॥
विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम्।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥ ४ ॥

अन्वयः– यशस्विनी, मन्युमती, कुले जाता, विभावरी, क्षत्रधर्मरता, दान्ता, दीर्घदर्शिनी, विदुला, राजसंसत्सु विश्रुता, श्रुतवाक्या, बहुश्रुता विदुलानाम राजन्या सिन्धुराजेन निर्जितं दीनचेतसं शयानं औरसं पुत्रं जगर्हे ॥ २-४ ॥

अर्थ–यशस्विनी, उत्साहवाली, श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न, विशेष भावनासे संपन्न क्षत्र धर्म जाननेवाली, और उस क्षत्र धर्मके पालन में दक्ष, संयम करनेवाली, दूरदर्शिनी, राजसभाओंमें प्रसिद्ध, जिसने बहुत उपदेश सुने हैं, और जिसके पास बहुत श्रुतिवचन हैं, ऐसी विदुला नामक राजकन्या सिंधुराजाके द्वारा पराजित हुए और पराजयके कारण

दीन चित्त बने हुए, सोनेवाले अपने औरस पुत्रकी निन्दा करनेलगी ॥ २-४ ॥

विदुलोवाच ।

अनन्दन मया जात द्विषतां हर्षवर्धन ।
न मया त्वं न पित्रा च जातः काऽभ्यागतो ह्यसि ॥ ५ ॥

अन्वयः- विदुला उवाच-हे अनन्दन ! द्विषतां हर्षवर्धन ! मया जात ! त्वं न मया जातः, न च पित्रा जातः, क अभ्यागतः असि हि ॥ ५ ॥

अर्थ-विदुला बोली-हे मुझे आनंद न देनेवाले परंतु शत्रुओंका हर्ष बढानेवाले, मेरेसे उत्पन्न पुत्र ! तुम मेरे गर्भसे सचमुच उत्पन्न नहीं हुए हो, नाही पितासे भी तुम उत्पन्न हुए हो ! भला कहो तो सहि, कि कहांसे तुम आये हो ? ॥ ५ ॥

भावार्थ-हे पुत्र ! यद्यपि तू मेरे पेटसे पैदा हुआ है तथापि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तू न मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ है और न पितासे तुम्हारी उत्पत्ति है। क्योंकि तूं अपने आचरणसे मेरा आनंद बढाता नहीं और अपना कर्तव्य भी नहीं करता है। प्रत्युत शत्रुओंका ही आनंद बढाता है। इस लिये तू किसी अधम स्थानसे हमारे कुलमें आया है।

निर्मन्युश्चाऽप्यसङ्ख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः ।
यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ॥ ६ ॥

अन्वयः-निर्मन्युः च असंख्येयः, पुरुषः अपि क्लीबसाधनः, यावज्जीवं निराशः असि। कल्याणाय धुरं वह ॥ ६ ॥

अर्थ—तुम उत्साहरहित हो, इस लिये तुम्हारी गिनती श्रेष्ठ पुरुषोंमें नहीं होती है, तथा तुम पुरुष होकर भी तुम्हारे सब साधन अति दुर्बल हैं और तुम जन्मसे निराश हो। अतः अपने कल्याणका साधन करनेके लिये आगे बढो ॥ ६ ॥

भावार्थ- (निर्मन्युः) जिस पुरुषको उत्साह न हो और शत्रुके विषयमें क्रोध न आता हो, (असंख्येयः) जिस पुरुषकी गिनती बडे श्रेष्ठ पुरुषोंमें न होती हो, (क्लीब-साधनः) जिस पुरुषके साधन अति दुर्बल होते हों अर्थात् जिसके प्रयत्नोंमें कोई बल न हो और जो सदा हताश निरुत्साही अथवा दीन रहता हो, दीन वचन बोलता हो, उसकी उन्नति होना अशक्य है। इस लिये हरएक को उचित है कि वह अपने कल्याण के लिये सदा आगे बढनेका यत्न करे। पीछे रहनेसे उन्नति होना अशक्य है।

बोध-मनुष्य सदा उत्साहसे युक्त रहे, उत्साहके वचन सुने और उत्साह बढानेवाले पुस्तक पढे तथा उत्साही पुरुषोंके साथ रहे। शत्रुका प्रतिकार करनेके विषयमें मनुष्य सदा दक्ष रहे और शत्रुका विचार आते ही उसके मनमें क्रोध उत्पन्न हो। मनुष्यके ऐसे प्रयत्न हों कि जिससे उसकी गिनती बडे पुरुषोंमें हो सके। मनुष्य अपने पास सब साधन ऐसे इकट्ठे करे, कि जिन साधनोंसे उसका बल बढे, उसका प्रभाव बढे और उसका नाम सुनते ही शत्रुओंको डर उत्पन्न हो। मनुष्य कभी निराश न हो, कितनी भी आपत्ति क्यों न आजाय, मनुष्य अपने भविष्यके लिये आशामय भाव मनमें रखे। और सदा अपने कल्याण के लिये आगे बढ कर प्रयत्नशील रहे, सदा अपनी उन्नति का विचार करे, उन्नतिके विषयमें बोले और प्रयत्नभी उसीके लिये करे ॥

माऽऽत्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः ।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७ ॥

अन्वयः- आत्मानं मा अवमन्यस्व, एनं आत्मानं अल्पेन मा बीभरः, सुकल्याणं मनः कृत्वा, त्वं मा भैः, प्रतिसंहर ॥ ७ ॥

अर्थ- अपने आत्माका कभी अपमान न कर, अपने आत्माकी संतुष्टि अल्प लाभसे न होनेदें, कल्याणमय भावसे युक्त मन करके तू निर्भय हो जा, और शत्रुका प्रतिकार रक ॥ ७ ॥

भावार्थ—अपने आत्माका अपमान कभी करना नहीं चाहिये, क्योंकि वह बडा शक्तिशालि और अदम्य है। अल्पलाभ में संतुष्ट रहना भी नहीं चाहिये, परंतु जो लाभ प्राप्त हुआ हो उसको लेकर उससे भी अधिक प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न शील होना चाहिये। मन सदा कल्याण शुभ तथा उत्साह पूर्ण विचारोंसे परिपूर्ण रखना चाहिये। निडर बनकर कार्य करना चाहिये और शत्रुका प्रतिकार करनेके लिये सदा तैयार रहना चाहिये।

उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः ।
अमित्रान्नन्दयन्सर्वान्निर्मानो बन्धुशोकदः ॥ ८ ॥

अन्वयः— हे कापुरुष! उत्तिष्ठ, पराजितः, सर्वान् अमित्रान् नन्दयन्, निर्मानः, बन्धुशोकदः एवं मा शेष्व ॥ ८ ॥

अर्थ- हे हीन मनुष्य! उठ, ऐसा पराजित हो कर, सब शत्रुओंका आनंद बढाता हुआ, सम्मान रहित बन कर, अपने बंधुओंका दुःख बढाने वाला हो कर, इस प्रकार मत सोजा ॥ ८ ॥

भावार्थ-- मनुष्यको चाहिये कि वह कभी पराजित न हो, पराजित होने पर अपने शत्रुओंको दूर हटानेका यत्न करे। स्वयं सम्मान रहित और आलसी बन कर शत्रुओंकी खुशी बढानेवाला कोई भी न बने। शत्रु जितने दिन रहेंगे उतने दिन अपना तथा अपने भाईयोंका दुःख बढता है इस लिये कोई पुरुष शत्रुके विषयमें कभी उदासीन न रहे, सोता न रहे, आलसी न बने, परन्तु कटिबद्ध होकर शत्रुओंको दूर करने का यत्न करे।

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।
सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥ ९ ॥

अन्वयः-कुनदिका वै सुपूरा, मूषिकाञ्जलिः सुपूरः, कापुरुषः सुसन्तोषः, स्वल्पकेन एव तुष्यति ॥ ९ ॥

अर्थ-छोटा नाला झट भर जाता है, चूहे की अंजली झट भर जाती है, हीन मनुष्य थोडेसे संतुष्ट हो जाता है। (अर्थात् जो उन्नति चाहने वाला हो वह अल्प लाभसे संतुष्ट न हो) ॥ ९ ॥

अप्यहेरारुजन्दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः ॥ १० ॥

अन्वयः—अहेः दंष्ट्रां आरुजन् अपि आशु एव निधनं व्रज। अपि वा जीविते संशयं प्राप्य अपि पराक्रमेः ॥ १० ॥

अर्थ — सर्प के दांतोंको पटकर चाहे तू शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो। अथवा जीवनके विषयमें संशयित हो कर भी परम पुरुषार्थ करो ॥ १० ॥

भावार्थ- यदि तू पुरुषार्थ करना नहीं चाहता है तो सापको दुःख दे जिससे वह तुम्हें काटेगा और तू शीघ्रही मर जायगा। ऐसे तेरे पुरुषार्थ हीन जीवनसे क्या लाभ हो सकता है ? अथवा ऐसा पुरुषार्थ कर कि जिससे या तो तुझे जय मिले या पूरा नाश हो जाय। अर्थात अपनी उन्नतिके लिये पुरुषार्थ करते हुए तू मर भी गया तो भी कोई हानि नहीं है। परंतु ऐसा आलस्य मय जीना व्यर्थ है।

अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन्।
विवदन्वाऽथवा तूष्णीं व्योम्नीवाऽपरिशङ्कितः ॥ ११ ॥

अन्वयः - त्वं विपरिक्रमन्, विवदन् अथवा तूष्णीं अपरिशंकितः व्योम्नि इव श्येनवत् अरेः छिद्रं पश्य ॥ ११ ॥

अर्थ—तू पराक्रम करता हुआ, विवाद करता हुआ अथवा चुप चाप रहा हुआ भी शंकासे रहित होकर आकाश के बाजपक्षीके समान शत्रुके छिद्र देख ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार बाजपक्षी आकाशमें चुपचाप घूमता हो , स्थिर रहा हो या चिल्लाता हो, हरएक अवस्थामें निःशंक वृत्तिसे अपने शत्रुके छिद्र देख कर उसपर हमला करनेके लिये सिद्ध रहता है और योग्य समय देखकर हमला भी करता है, ठीक उस प्रकार मनुष्य को भी चाहिये कि वह अपने शत्रुके छिद्र देखे और उसके छिद्र देखकर उनपर ही हमला चढावे और यश संपादन करे। चुपचाप रहनेसे यश नहीं मिलेगा।

त्वमेवं प्रेतवच्छेपे कस्माद्वज्रहतो तथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वाप्सीः शत्रुनिर्जितः ॥ १२ ॥

अन्वयः—त्वं यथा वज्रहतः तथा कस्मात् एवं प्रेतवत् शेपे। हे कापुरुष! उत्तिष्ठ। शत्रुनिर्जितः मा स्वाप्सीः ॥ १२ ॥

अर्थ—तू वज्रसे ताडित हुएके समान क्या ऐसा प्रेतवत् सोता है। हे हीन मनुष्य! उठ। शत्रुसे पराजित बनकर मत सोता रह ॥ १२ ॥

भावार्थ—यह सोनेका समय नहीं है, शत्रुओंको दूर करनेका पुरुषार्थ करनेकी तैयारी करके ऊठ और प्रयत्न कर ॥

माऽस्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माऽधो भूस्तिष्ठ गर्जितः ॥१३॥

अन्वयः— त्वं कृपणः (भूत्वा) अस्तं मा गमः। स्वकर्मणा विश्रूयस्व। त्वं मा मध्ये मा जघन्ये मा अधः भूः। गर्जितः तिष्ठ ॥ १३ ॥

अर्थ— तू दीन बन कर नाशको प्राप्त न हो। अपने पुरुषार्थसे जगत् में विख्यात बन। तू बीचमें, अवनत अवस्थामें अथवा नीच स्थितिमें न रह। गर्जना करता हुआ अपने उच्च स्थानपर ठहर जा ॥ १३ ॥

भावार्थ— दीन बननेसे नाश हो जाता है, इस लिये कभी दीन बनकर अपना नाश करना उचित नहीं है। ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये कि जिससे सब जगत्में प्रसिद्धि हो जाय। अधम नीच अथवा बीच की अवस्थामें कभी सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, प्रत्युत गर्जता हुआ अपने उच्च स्थानमें स्थिर होना चाहिये।

अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि हि ज्वल।
मा तुषाग्निरिवाऽनर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥ १४ ॥

अन्वयः— तिन्दुकस्य अलातं इव मुहूर्तं अपि ज्वल। जिजीविषुः (त्वं) अनर्चिः तुषाग्निरिव मा धूमायस्व ॥ १४ ॥

अर्थ— सूखी लकडीकी ज्वालाके समान घडी भर भी जलता रह, परन्तु जीनेकी इच्छा करनेवाला तू ज्वाला रहित भूंसकी आगके समान धूवां उत्पन्न करता हुआ ही न रह ॥ १४ ॥

भावार्थ— सूखी लकडीयां जिस प्रकार झट जलती हैं और प्रकाशित होती हैं, उसी प्रकार मनुष्य थोडी देर क्यों न हो अच्छी प्रकार प्रकाशित हो जाय। परन्तु भूंसकी छिपी और धूंवा बढानेवाली आग के समान कभी छिपा हुआ न रहे ॥

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।
मा ह स्म कस्यचिद्गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः ॥१५॥

अन्वयः— मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः, न च चिरं धूमायितं। ह कस्यचित् राज्ञः गेहे खरः मृदुः मा जनि स्म ॥ १५ ॥

अर्थ— घडी भर जलते रहना हितकारक है, परन्तु चिरकाल धूंवा उत्पन्न करते रहना ठीक नहीं। किसी भी राजाके घरमें क्रूर अथवा नरम पुत्र उत्पन्न न हो ॥१५॥

भावार्थ- घडीभर तेज दिखाना योग्य है। परन्तु चिरकाल जीवन धारण करके निस्तेज अवस्थामें रहना योग्य नहीं है। किसी के घरमें अथवा विशेष करके राजाके घरमें अतिक्रूर अथवा अति दुर्बल पुत्र कभी उत्पन्न न हो। क्यों कि अतिक्रूर मनुष्य आपसमें अशान्ति फैलाता है और दुर्बल मनुष्य शत्रुसे पराजित होता है, इस लिये ये दोनो स्वभाव ठीक नहीं हैं ॥

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाऽऽजिं यावदुत्तमम्।
धर्मस्याऽऽनृण्यमाप्नोति न चाऽऽत्मानं विगर्हते ॥१६॥

अन्वयः— यावदुत्तमं मानुष्यकं कर्म कृत्वा, आजिं सृत्वा, धर्मस्य आनृण्यं आप्नोति, आत्मानं च न विगर्हते ॥ १६ ॥

अर्थ— जहांतक हो सके वहां तक अति उत्तम पुरुषार्थ करके, शत्रुके साथ युद्ध करके ही मनुष्य धर्मके ऋण से मुक्त हो जाता है। और अपने आत्माकी भी निन्दा नहीं करता ॥ १६ ॥

भावार्थ — धर्मके ऋणसे मुक्त होने का उपाय यही है कि मनुष्य परम पुरुषार्थ करे और युद्धमें शत्रुका पराजय करे। इससे मनुष्यकी कभी निन्दा नहीं हो सकती ॥

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नाऽनुशोचति पण्डितः।
आनन्तर्यं चाऽऽरभते न प्राणानां धनायते ॥ १७ ॥

अन्वयः— पण्डितः अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा न अनुशोचति। प्राणानां न धनायते, आनन्तर्यं च आभरते ॥ १७ ॥

अर्थ— इच्छित वस्तु प्राप्त न होने या होनेसे ज्ञानी मनुष्य कभी शोक नहीं करते हैं। परन्तु प्राणोंकी पर्वाह न करते हुए अंतिम कर्तव्य समाप्त होने तक पुरुषार्थ करते रहते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— मनुष्यको उचित है कि लाभ होनेसे आनन्दित होकर पुरुषार्थ न छोड दे तथा हानि होनेसे हताश होकर भी निरुत्साही न बने। परन्तु जैसा लाभकी दशामें उसी प्रकार विपरीत अवस्थामें भी प्राणोंकी पर्वाह न करते हुए अन्तिम कर्तव्य समाप्त होने तक उत्तमोत्तम पुरुषार्थ करता रहे ॥

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राऽग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १८ ॥

अन्वयः— हे पुत्र! धर्मं अग्रतः कृत्वा वीर्यं उद्भावयस्व, तां वा ध्रुवां गतिं गच्छ। हि किंनिमित्तं जीवसि ॥ १८ ॥

अर्थ— हे पुत्र! धर्मको आगे रख कर पराक्रम करके दिखा दो, नहीं तो उस (मृत्युकी) निश्चित गतिको प्राप्त हो, परन्तु इस प्रकार क्यों जीवित रहे हो?॥ १८ ॥

भावार्थ— धर्मको सन्मुख रखकर धर्मानुसार पराक्रम करना चाहिये और यश संपादन करना चाहिये अथवा पराक्रम करते करते मरना भी भूषण ही है। परन्तु आलस्य रूप पुरुषार्थ-हीन जीवित किस काम का है?

इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १९ ॥

अन्वयः— हे क्लीब! हि ते इष्टापूर्तं सकला कीर्तिः च हता। ते भोगमूलं विच्छिन्नं हि किंनिमित्तं जीवसि ॥ १९ ॥

अर्थ— हे क्लीब! तेरे इष्टापूर्त धर्म कर्म तथा संपूर्ण कीर्ति नष्ट हुई है, और तेरे

भोगोंका मूल भी सब नष्ट हुआ है, फिर ऐसी हीन अवस्थामें तू कैसा जीता रहता है?

भावार्थ— मनुष्यको इष्ट प्राप्तीके कर्म तथा दूसरोंके भरण पोषण के कर्म करने होते हैं। तथा यश प्राप्तिके पुरुषार्थ और अपने भोगोंके लिये भी कुछ कर्म करने होते हैं। पराधीनतासे ये सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस लिये सब प्रयत्न करके एक तो स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिये अथवा नहीं तो मरजाना चाहिये। बीचमें आलस्यमें हीन वृत्तिसे रहना बहुतही बुरा है।

शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता।
विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत्कथञ्चन ॥ २० ॥

अन्वयः— निमज्जता प्रपतिष्यता शत्रुः जङ्घायां ग्राह्यः, विपरिच्छिन्नमूलः अपि कथञ्चन न विषीदेत् ॥ २० ॥

अर्थ— डूबते हुए अथवा गिरते हुए भी स्वयं शत्रुको जंघामें पकडना चाहिये। जड समेत उखड जाने पर भी किसी प्रकार विषाद करना नहीं चाहिये॥ २० ॥

भावार्थ— स्वयं डूबते हुए अथवा गिरनेके समय शत्रुको जंघामें पकडकर अपने साथ उसको भी डुबाना या गिराना चाहिये। स्वयं जड समेत उखड जाने परभी अपना उठनेका प्रयत्न बंद करना योग्य नहीं। कभी हताश नहीं होना चाहिये, प्रत्युत सदा उत्साहसे आगे बढना चाहिये।

उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन्।
कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः।
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि ॥ २१ ॥

अन्वयः— उद्यम्य धुरं उत्कर्षेत्, सत्वं मानं च कुरु, आजानेयकृतं स्मरन् आत्मनः पौरुषं विद्धि ॥ हि त्वत्कृते मग्नं कुलं स्वयं एव उद्भावय ॥ २१ ॥

अर्थ— उद्योग करके धुराका उत्कर्ष करना चाहिये। तथा बल और मान बढाना चाहिये। उत्तम घोडेका पौरुष देखकर भी तुमको अपना पुरुषार्थ बढाना योग्य है ॥ क्यों कि तेरे कारण ही अपना कुल गिर गया है, उसे तुम ऊपर उठा ॥ २१ ॥

भावार्थ— स्वयं पुरुषार्थ करके अपना, अपने कुलका, अपने राष्ट्रका उद्धार करना चाहिये। उत्तम घोडेके पौरुष को देखकर अपने पुरुषार्थ को बढाना चाहिये। अपने कारणसे जो भाग नष्ट हुआ हो उसके उद्धारके लिये स्वयं ही यत्न करना चाहिये।

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम् ।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥ २२ ॥

अन्वयः— यस्य महत् अद्भुतं कृत्यं मानवाः न जल्पंति, सः राशिवर्धनमात्रं, न एव स्त्री, पुनः न पुमान् ॥ २२ ॥

अर्थ— जिसके बडे अद्भुत उद्योग की सब मनुष्य प्रशंसा नहीं करते वह केवल जनसंख्या बढानेवाला है। वास्तवमें न तो वह स्त्री है और न पुरुष है ॥ २२ ॥

दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥ २३ ॥

अन्वयः - दाने, तपसि, सत्ये, विद्यायां, अर्थलाभे वा यस्य यशः न उच्चरितं, स मातुः उच्चारः एव ॥ २३ ॥

अर्थ- दान, तप, सत्य, विद्या, धन प्राप्ति आदिके विषयमें जिसका यश गाया नहीं जाता, वह केवल माता का मलही है ॥ २३ ॥

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा ।
जनान्योऽभिभवत्यन्यान्कर्मणा हि स वै पुमान् ॥ २४ ॥

अन्वयः - यः श्रुतेन, तपसा, श्रिया, विक्रमेण, कर्मणा वा अन्यान् जनान् अभिभवति, स वै पुमान् हि ॥ २४ ॥

अर्थ- जो ज्ञान, तप, धन, पराक्रम, अथवा कर्मसे अन्योंसे आगे बढ जाता है वही निश्चयसे पुरुष कहाता है ॥ २४ ॥

न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ।
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ॥ २५ ॥

अन्वयः - जाल्मीं, नृशंस्यां, अयशस्यां, दुःखां, कापुरुषोचितां कापालीं वृत्तिं न तु एव एषितुं अर्हसि ॥ २५ ॥

अर्थ- नीच, हीन, यश घटानेवाली, दुःख दायी, हीन मनुष्यके लिये उचित कापालिक वृत्ति को धारण करना तेरे लिये योग्य नहीं ॥ २५ ॥

भावार्थ- खोपडी हाथमें लेकर उसमें भीख मांगकर खाना यह कापालिकोंका व्यवहार हीन वृत्तिका है, यह यश घटानेवाला दुःखदायी और हीन तथा दीन है, इसलिये मनुष्यको इस प्रकार व्यवहार करना उचित नहीं है ।

यमेनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम्।
लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम् ॥ २६ ॥
अहोलाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम्।
नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते ॥ २७ ॥

अन्वयः – लोकस्य समवज्ञातं, निहीनासनवाससं, अहोलाभकरं, हीनं, अल्पजीवनं, अल्पकं, यं एनं कृशं पुरुषं अमित्राः अभिनन्देयुः, ईदृशं बंधुं आसाद्य बान्धवः सुखं न एधते ॥ २६—२७ ॥

अर्थ- लोगोंमें निंदित, हीन आसन वस्त्रादिसे युक्त, थोडे लाभमें अधिक संतुष्ट, दीन, अल्प जीवन वाला, छोटे दीलवाला, कृश पुरुष जिसे देख कर केवल शत्रुही आनंदित होते हैं, उसे प्राप्त करके बंधुओंको सुख नहीं होता है ॥ २६ ॥

भावार्थ— जिसकी सब लोग निंदा करते हैं, जो सदा क्षुद्र तथा मलीन वस्त्र आदि से युक्त होता है, जो कृश, दीन, हीन तथा क्षुद्र आशय वाला होता है, उसके कारण उसकी जातिकी उन्नति नहीं होती, परंतु उसके शत्रु ही उसके कारण आनंदित हो जाते हैं।

अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात्प्रवासिताः।
सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिञ्चनाः ॥ २८ ॥

अन्वयः- राष्ट्रात् प्रवासिताः, सर्वकामरसैः हीनाः, स्थानभ्रष्टाः, आकिञ्चनाः वयं अवृत्या एव विपत्स्यामः ॥ २८ ॥

अर्थ- राष्ट्रसे अलग किये, सब कामोंके भोगोंसे रहित, स्थानसे भ्रष्ट, धनादिसे रहित, हम सब लोग अकिंचन होकर केवल अवृत्तिसे ही विपत्तीमें पडे हैं ॥ २८ ॥

अवल्गुकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम्।
कलिं पुत्रप्रवादेन सञ्जय त्वामजीजनम् ॥ २९ ॥

अन्वयः— हे संजय! सत्सु अवल्गुकारिणं, कुलवंशस्य नाशनं त्वां पुत्रप्रवादेन कलिं अजीजनम् ॥ २९ ॥

अर्थ- हे संजय! सज्जनोंके बीचमें अयोग्य व्यवहार करनेवाले, कुलवंशके नाशक तुझको पुत्रके रूपसे उत्पन्न करके मैंने कलिको ही जन्म दिया है ॥ २९ ॥

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम्।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥ ३० ॥

अन्वयः- निरमर्षं, निरुत्साहं, निर्वीर्यं, अरिनन्दनं ईदृशं पुत्रं काचित् सीमान्तिनी मा स्म जनयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ— क्रोध रहित, उत्साह रहित, पराक्रम रहित, और शत्रुको खुष करनेवाले, इस प्रकारके पुत्रको कोनसी भी स्त्री उत्पन्न न करे ॥ ३० ॥

मा धूमाय ज्वलाऽत्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान् ।
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः- मा धूमाय, अत्यन्तं ज्वल, शात्रवान् आक्रम्य जहि, अमित्राणां मूर्धनि मुहूर्तं क्षणं अपि वा ज्वल ॥ ३१ ॥

अर्थ- केवल धूवाँ ही उत्पन्न न कर, अत्यन्त प्रकाशित हो, और शत्रुओंपर हमला करके उनका नाश कर। शत्रुओंके सिरपर घडीभर अथवा क्षणभर भी जलता रह ॥ ३१ ॥

भावार्थ- जिस प्रकार धूवाँ उत्पन्न करनेवाला अग्नि निकम्मा है, उसी प्रकार आलसी मनुष्यका जीवन व्यर्थ है। खुली ज्वालासे जलने वाला अग्नि प्रकाशनेके कारण अच्छा होता है, उसी प्रकार यशस्वी उद्यमी पुरुषही श्रेष्ठ होता है। घडी भरभी क्यों न हो परंतु मनुष्यको उचित है, कि वह अपने शत्रुओंका पराजय करे और उनके सिरपर प्रकाशित रहे और यशका भागी बने।

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ।
क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥ ३२ ॥

अन्वयः- एतावानेव पुरुषः यत् अमर्षी, यत् अक्षमी। क्षमावान् निरमर्षः नैव स्त्री पुनः न पुमान् ॥ ३२ ॥

अर्थ - वही पुरुष है जो क्रोधी और क्षमा न करनेवाला हो। जो क्षमा करता है और क्रोधशून्य है वह न तो स्त्री है और नाही पुरुष है ॥ ३२ ॥

भावार्थ- जिस मनुष्यमें शत्रुके विषयमें क्रोध होता है और जो शत्रुको कभी क्षमा नहीं करता उसीको पुरुष कहते हैं। जो अपने नाश करनेवाले शत्रुको भी क्षमा करता है और अपने घात करनेवाले पर भी क्रोध नहीं करता, वह स्त्री भी नहीं और पुरुष तो निश्चयसे ही नहीं। फिर वह कोई तीसरा ही होगा।

सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथाऽनुक्रोश एव च ।
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाऽश्नुते महत् ॥ ३३ ॥

अन्वयः- सन्तोषः तथा अनुक्रोशः एव श्रियं हन्ति वै, च उभे अनुत्थानभये। निरीहः महत् न अश्नुते ॥ ३३ ॥

अर्थ-संतोष, दया ये दो धनका नाश करते हैं। इसी प्रकार चढाई न करना और भय ये भी ऐश्वर्यके नाशक हैं। निरिच्छ पुरुष श्रेष्ठ पदको प्राप्त नहीं होता है ॥ ३३ ॥

भावार्थ- प्राप्त स्थितिमें संतोष, शत्रुपर दयाभाव करना, परम पुरुषार्थ प्रयत्न न करना और मनमें भय धारण करना ये चार बातें ऐश्वर्यका नाश करती हैं। महत्त्वाकांक्षा धारण न करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् प्राप्त स्थितिमें असंतुष्टि, शत्रुपर कभी दया न करना, सदा परम पुरुषार्थ करना, मनमें भय न होना और महत्व प्राप्तिकी इच्छा मनमें धारण करना इन बातोंसे श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त होती है।

एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चाऽऽत्मानमात्मना ।
आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः- एभ्यः निकृतिपापेभ्यः आत्मना आत्मानं प्रमुञ्च। आयसं हृदयं कृत्वा पुनः स्वकं मृगयस्व ॥ ३४ ॥

अर्थ — इन अवनति करनेवाले पाप भावोंसे स्वयं अपने आपको बचाओ और लोहेका हृदय करके पश्चात् अपना(गया हुआ राज्य स्वातंत्र्य आदि)प्राप्त करो॥ ३४॥

परं विषहते यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ।
तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद्य इह जीवति ॥ ३५ ॥

अन्वयः— यस्मात् परं विषहते तस्मात् पुरुषः उच्यते। यः इह स्त्रीवत् जीवति तं व्यर्थनामानं आहुः ॥ ३५ ॥

अर्थ- जिस कारण (परं विषहते इति पुरुषः उच्यते) यह शत्रुका पराजय कर सकता है, इसी कारण इसको पुरुष कहते हैं। जो स्त्री के समान [पराधीनतामें] जीवित रहता है उसका पुरुष नाम व्यर्थ है ॥ ३५ ॥

शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः ।
दिष्टभावं गतस्यापि विषये मोदते प्रजा ॥ ३६ ॥

अन्वयः- ऊर्जितसत्त्वस्य, सिंहविक्रान्तचारिणः, शूरस्य दिष्टभावं गतस्य अपि विषये प्रजा मोदते ॥ ३६ ॥

अर्थ- उच्च पराक्रमवाले, सिंह के समान प्रतापी आचरण करने वाले, शूरवीर राजा के मृत्युको प्राप्त हो जानेपर भी उसके राज्यमें प्रजा आनंद से रहती है ॥ ३६ ॥

य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ॥ ३७ ॥
अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३८ ॥

अन्वयः- यः आत्मनः प्रियसुखे हित्वा श्रियं मृगयते, अथो सः अचिरेण अमात्यानां हर्षं आदधाति ॥ ३७ - ३८ ॥

अर्थ- जो राजा अपने प्रिय और सुखकी पर्वाह छोड कर राज्य लक्ष्मी बढाना चाहता है वह राजा थोडे ही समयमें मंत्रियों का आनंद बढाता है।

पुत्र उवाच।

किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया।
किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३९॥

अन्वयः- पुत्र उवाच- मां अपश्यन्त्याः ते सर्वया पृथिव्या अपि किं नु, ते आभरणकृत्यं किं, भोगैः जीवितेन वा किम् ॥ ३९॥

अर्थ- पुत्र बोला- मुझे न देखती हुई तुझे सब पृथ्वीसे क्या, तुझे आभूषणोंसे क्या और भोग तथा जीवितसे भी क्या लाभ है? ॥ ३९॥

भावार्थ— हे माता! मेरे मर जानेपर राज्य धन और भोग अथवा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होनेसे भी तुझे कौनसा सुख प्राप्त होगा? क्यों कि तू जो युद्धका मार्ग मुझे बता रही है वह करने पर, संभव है कि मैं उसमें मर जाऊं, तो फिर मेरे मर जानेके पश्चात् तुझे सुख कैसे हो सकता है?

मातोवाच।

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः।
ये त्वादृतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान्व्रजन्तु नः ॥ ४०॥

अन्वयः- माता उवाच- किमद्यकानां ये लोकाः तान् द्विषन्तः अवाप्नुयुः। ये तु आदृतात्मनां लोकाः तान् नः सुहृदः व्रजन्तु ॥ ४०॥

अर्थ— माता बोली-- जो अवस्थाएं आलसी भूखे लोगोंको प्राप्त होती हैं उन अवस्थाओंको हमारे सब शत्रु प्राप्त हों और जो आदरको पाये हुए लोगोंके सब स्थान हैं उनको हमारे मित्रजन प्राप्त हों ॥ ४०॥

भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम्।
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ॥ ४१॥

अन्वयः- भृत्यैः विहीयमानानां, परपिण्डोपजीविनां, कृपणानां, असत्त्वानां वृत्तिं मा अनुवर्तिथाः ॥ ४१॥

अर्थ— नौकर जिनको छोड देते हैं, जो दूसरेके दिये अन्नपर गुजारा करते हैं, जो दीन और निःसत्त्व हैं उन लोगोंकी वृत्तिका अवलम्बन मत् कर ॥ ४१॥

भावार्थ — जब मनुष्यकी अवस्था हीन होती जाती है तब उनके पास वेतन देनेके लिये धन न होने के कारण कोई नौकर रहता नहीं, अपनी कमाईका अन्न उनके पास नहीं होता अर्थात् जो पुरुषार्थ हीन हैं, जो दीन भावसे रहते हैं और जो आत्मसंमानसे नहीं रहते उनका अनुकरण करना किसीको भी उचित नहीं है। अर्थात् जिनके पास धन होने के कारण नौकर रहते हैं, जो अपनी कमाईका अन्न खाते हैं, जो उदार चरित और समर्थ हैं उनकी वृत्तिका अनुकरण करना योग्य है।

अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा।
पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः— हे तात! भूतानि पर्जन्यं इव, देवाः शतक्रतुं इव, ब्राह्मणाः तथा सुहृदः त्वां अनुजीवन्तु ॥

अर्थ—हे तात! जिस प्रकार सब भूत पर्जन्यके और सब देव इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं, उसप्रकार सब ब्राह्मण और सब मित्र तेरा आश्रय करके जीवित रहें। अर्थात् तेरे अंदर इतना सामर्थ्य आजावे कि तेरे आश्रयसे इन सब की पालना होवे।

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय।
पक्वं द्रुममिवाऽऽसाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४३ ॥

अन्वयः— हे सञ्जय! पक्वं द्रुमं इव यं पुरुषं आसाद्य सर्वभूतानि आजीवन्ति तस्य जीवितं अर्थवत् ॥

अर्थ— हे सञ्जय! पके फलोंसे युक्त वृक्षके आश्रय करनेके समान जिस पुरुष का आश्रय करके सब प्राणी जीवित रहते हैं, उसीका जीवन सार्थक समझना योग्य है।

भावार्थ— जिस प्रकार पके फलोंसे युक्त वृक्षका आश्रय करके पक्षी जीवित रहते हैं, उसी प्रकार जिस समर्थ पुरुष के आश्रयसे अनेक मनुष्य अपनी आजीविका करते हैं उसी मनुष्यका जीवन सार्थक हुआ समझना चाहिये।

यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम्।
त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः— त्रिदशाः शक्रस्य इव यस्य शूरस्य विक्रान्तैः बान्धवाः सुखं एधन्ते, इह तस्य जीवितं साधु ॥

अर्थ--- जिस प्रकार सब देव इंद्रके पराक्रमसे सुखी होते हैं उस प्रकार जिस शूर पुरुष के पराक्रमोंसे बंधु बांधवोंका सुख बढता है, उसीका यहांका जीवन उत्तम समझना चाहिये।

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
विदुलापुत्रानुशासने त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥
जयाख्याने प्रथमोऽध्यायः।

अन्वयः---- यः मानवः स्वबाहुबलं आश्रित्य अभ्युज्जीवति, सः लोके कीर्तिं परत्र च शुभां गतिं लभते॥

अर्थ---- जो मनुष्य अपने बाहुबलका आश्रय करके अभ्युदय प्राप्त करता है वह इह लोकमें कीर्ति और परलोकमें शुभ गति को प्राप्त होता है।

भावार्थ— इह पर लोकमें उत्तम गति प्राप्त होने के लिये अपने बाहुओंका बल बढाना चाहिये तथा राष्ट्रीय संघशक्ति भी बढाना चाहिये अर्थात् यहांका अभ्युदय प्राप्त करना चाहिये। अभ्युदय प्राप्त होनेके विना निश्रेयस प्राप्ति नहीं हो सकती। पर लोक के विशेष अधिकार प्राप्त होने के लिये इस लोकके अधिकारोंकी सुरक्षितता करना आवश्यक है। जो इस लोकमें सुरक्षित नहीं रह सकता, उसको परलोकमें उत्तम गति प्राप्त होगी, यह आशा करना व्यर्थ है।

जय इतिहासमें प्रथम अध्याय समाप्त।

जय इतिहास।

द्वितीय अध्याय।

विदुलोवाच।

अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि।
निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥ १ ॥

अन्वयः- विदुला उवाच-अथ एतस्यां अवस्थायां पौरुषं हातुं इच्छसि, निहीन-सेवितं मार्गं अचिरादिव गमिष्यसि ॥ १ ॥

अर्थ- विदुला बोली-अब ऐसी अवस्था में यदि तू पौरुष प्रयत्न छोडनेकी इच्छा करता है, तो हीन लोगों के मार्ग से ही शीघ्र चला जायगा ॥ १ ॥

भावार्थ--पुरुषार्थ प्रयत्न छोड देनेसे मनुष्य हीन और दीन बनता है, इस लिये पुरुषार्थ छोडना अच्छा नहीं है।

यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात्।
क्षत्रियो जीविताकांक्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥ २ ॥

अन्वयः- यः हि जीविताकांक्षी क्षत्रियः विक्रमात् यथाशक्ति तेजः न दर्शयति, तं स्तेनः इत्येव विदुः ॥ २ ॥

अर्थ— जो जीवित रहने की इच्छा करने वाला क्षत्रिय पराक्रम से यथाशक्ति तेज नहीं दर्शाता, उस को चोरही कहते हैं ॥ २ ॥

अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च।
नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम् ॥ ३ ॥

अन्वयः— अर्थवन्ति, उपपन्नानि, गुणवन्ति वाक्यानि, मुमूर्षुं भेषजं इव, त्वां नैव सम्प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

अर्थ— अर्थयुक्त, योग्य, गुणवाले वाक्य, मरने वाले को दवा के समान, तुझे अनुकूल नहीं प्रतीत होते ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार मरने वाले रोगीको दिया हुआ योग्य औषध अनुकूल नहीं पडता, उसी प्रकार गिरकर अधोगतिको जानेवाले मनुष्यको उत्तम बोध वचन अनुकूल प्रतीत नहीं होते।

सन्ति वै सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा न तथा जनाः ।
दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥

अन्वयः— जनाः सिन्धुराजस्य तथा सन्तुष्टाः न सन्ति वै, दौर्बल्यात् मूढाः व्यसनौघप्रतीक्षिणः आसते ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रजाजन सिंधुराजाके ऊपर निःसंदेह वैसे संतुष्ट नहीं हैं, परंतु वे दुर्बलताके कारण मूढसे बन कर उसपर संकट आनेकी प्रतीक्षा करके बैठे हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—अपने प्रजाजन उनको पराजित करने वाले सिंधुराजाके ऊपर कभी प्रेम नहीं करते हैं, परंतु वे बिचारे क्या कर सकते हैं, कुछ दूसरा उपाय न सूझनेके कारण वे उसके शासन में रहे हैं और उसके सङ्कटमें फंसनेका अवसर देख रहे हैं। इस लिये तू उठ कर खडा हो जाओ, तो तुमको प्रजाजनोंकी सहायता अवश्य मिलेगी।

सहायोपचितिं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः ।
अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५ ॥

अन्वयः— सहायोपचितिं कृत्वा, ततः ततः व्यवसाय्य, अपरे तव पौरुषं पश्यन्तः अनुदुष्येयुः ॥ ५ ॥

अर्थ— परस्पर सहायता करते हुए, तत्पश्चात् युद्धका प्रयत्न करके तथा तेरे पुरुषार्थ को देखकर ही वे शत्रु को फंसानेका यत्न करेंगे ॥ ५ ॥

तैः कृत्वा सह सङ्घातं गिरिदुर्गालयं चर ।
काले व्यसनमाकांक्ष नैवाऽयमजरामरः ॥ ६ ॥

अन्वयः- तैः सह सङ्घातं कृत्वा गिरिदुर्गालयं चर, काले व्यसनं आकांक्ष । अयं अजरामरः नैव ॥ ६ ॥

अर्थ— उनके साथ मेलमिलाप करके पहाडी दुर्गोंका आश्रय कर, समयमें उनके कष्टमें फस जानेकी प्रतीक्षा कर, क्यों कि वह शत्रु अजर और अमर नहीं है ॥ ६ ॥

भावार्थ- सिंधुराजके शत्रुओंके साथ मित्रता कर। कीलोंके आश्रयसे रह, तथा जिस समय वह कष्टमें फंसेगा, उस समय की प्रतीक्षा कर अर्थात् उस समय उसपर हमला करके उसका पराजय कर, क्यों कि वह कोई मृत्यु रहित अथवा वृद्धावस्था रहित नहीं है। वह कभी न कभी संकटमें फंसेगा ही। उस समयसे तुम लाभ उठाओ।

सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत्त्वयि।
अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥ ७॥

अन्वयः- त्वं नामतः संजयः, तत् च त्वयि न पश्यामि। हे मम पुत्र! अन्वर्थनामा भव, व्यर्थनामकः मा (भव) ॥ ७ ॥

अर्थ— तू नाम का "संजय" अर्थात् उत्तम रीतिसे जय कमानेवाला है। परंतु वह भाव तेरे अंदर मैं नहीं देखती हूं। अतः हे मेरे पुत्र! तू अन्वर्थक नामवाला होओ, व्यर्थनाम वाला न बन ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत्।
अयं प्राप्य महत्कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ८ ॥

अन्वयः- सम्यग्दृष्टिः महाप्राज्ञः ब्राह्मणः बालं त्वां अब्रवीत्, अयं महत्कृच्छ्रं प्राप्य, पुनः वृद्धिं गमिष्यति ॥ ८ ॥

अर्थ— उत्तम दृष्टिवाले महाज्ञानी एक ब्राह्मणने तेरे बालपनमें कहा था, कि यह महा संकट को प्राप्त होकर, पुनः वृद्धिको प्राप्त होगा ॥ ८ ॥

तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव।
तस्मात्तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः ॥ ९ ॥

अन्वयः- तस्य वचनं स्मरन्ती तव विजयं आशंसे, हे तात! तस्मात् त्वां ब्रवीमि पुनः पुनः वक्ष्यामि च ॥ ९ ॥

अर्थ- उसका वचन स्मरण करती हुई मैं तेरे विजय की इच्छा कर रही हूं। हे तात! इस लिये तुझे कहती हूं और बार बार कहती हूं ॥ ९ ॥

यस्य ह्यर्थाभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे।
तस्यार्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः ॥ १० ॥

अन्वयः- यस्य अर्थाभिनिर्वृत्तौ परे आप्यायिताः भवन्ति, नयेषु अर्थानुसारिणः तस्य नियता अर्थसिद्धिः ॥ १० ॥

अर्थ— जिसकी अर्थ सिद्धिमें दूसरे भी पूर्ण सहायक होते हैं, तथा नीतिके अनुसार जो कार्य करता है उसके कार्य की सिद्धिका निश्चयही है ॥ १० ॥

भावार्थ- जो धर्मनीतिके अनुसार सदा कार्य करता है और जिसके कार्यमें अनेक सहायक होते हैं और जिसके साथ कार्य करने में सहायकोंको भी लाभ पहुंचता है, उस की कार्य सिद्धि अवश्य होगी।

समृद्धिरसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम सञ्जय।
एवं विद्वान्युद्धमना भव मा प्रत्युपाहरः ॥ ११ ॥

अन्वयः– हे संजय! मम पूर्वेषां एवं समृद्धिः वा असमृद्धिः विद्वान् युद्धमनाः भव, मा प्रत्युपाहरः ॥ ११ ॥

अर्थ— हे संजय! मेरे पूर्वजों की इस प्रकार समृद्धि अथवा असमृद्धि होगी यह जान कर युद्ध करनेके लिये अपना मन तैयार कर और पीछे न हट। ॥ ११ ॥

नाऽतः पापीयसीं काश्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत्।
यत्र नैवाऽद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२ ॥

अन्वयः– शम्बरः अतः पापीयसीं काश्चिदवस्थां न अब्रवीत्, यत्र नैव अद्य, न प्रातः भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२ ॥

अर्थ– शंबर मुनिने इससे अधिक पापी अवस्था कोई नहीं कही है "जिस अवस्था में न आज और न प्रातःकाल खानेके लिये कुछ भी दिखाई देता है।" ॥ १२ ॥

भावार्थ– खानेके लिये अन्न पर्याप्त न रहना यह सबसे बुरी अवस्था है।

पतिपुत्रवधादेतत्परमं दुःखमब्रवीत्।
दारिद्र्यमिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ १३ ॥

अन्वयः– एतत् पतिपुत्रवधात् परमं दुःखं अब्रवीत्। दारिद्र्यं इति यत्प्रोक्तं तत् पर्यायमरणं हि ॥ १३ ॥

अर्थ– यह पति अथवा पुत्रवधसे भी अधिक दुःख है ऐसा कहते हैं। जो "दारिद्र्य" कहते हैं वह मरण का ही दूसरा नाम है ॥ १३ ॥

अहं महाकुले जाता ह्रदाद्ध्रदमिवाऽऽगता।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४ ॥

अन्वयः– अहं महाकुले जाता, ह्रदात् ह्रदं इव आगता। ईश्वरी, सर्वकल्याणी, भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४ ॥

अर्थ– मैं बडे कुलमें उत्पन्न हुई, एक ह्रद (कुल) से दूसरे ह्रद (कुल) में आयी, ईश्वरी, सब कल्याण वाली और पतिद्वारा पूजित हुई हूं ॥ १४ ॥

महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम्।
पुरा हृष्टः सुहृद्वर्गो मामपश्यत्सुहृद्गताम् ॥ १५ ॥

अन्वयः– हृष्टः सुहृद्वर्गः पुरा महार्हमाल्याभरणां, सुमृष्टाम्बरभूषणां, सुहृद्गतां मां अपश्यत् ॥ १५ ॥

अर्थ- संतुष्ट बना हुआ मित्रवर्ग पूर्व काल में मुझे बडे कीमती मौल्यवान् आभूषण धारण करनेवाली, स्वच्छ निर्मल कपडे और जेवर पहननेवाली (देखता था, वही आज) मित्रों के आश्रयमें रहते हुए मुझे देखेगा ॥ १५ ॥

यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टासि भृशदुर्बलाम् ।
न तदा जीवितेनाऽर्थो भविता तव सञ्जय ॥ १६ ॥

अन्वयः- हे सञ्जय ! यदा मां च भार्यां च भृशदुर्बलां एव द्रष्टासि, तदा तव जीवितेन अर्थः न भविता ॥ १६ ॥

अर्थ- हे संजय। जब मुझे और अपनी धर्म पत्नीको अति दुर्बल देखोगे, तब तेरे जीनेसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा ॥ १६ ॥

दासकर्मकरान्भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् ।
अवृत्याऽस्मान्प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥ १७ ॥

अन्वयः-दासकर्मकरान्, भृत्यान्, आचार्यर्त्विक्पुरोहितान्, अ-वृत्त्या अस्मान् प्रजहतो दृष्ट्वा ते जीवितेन किम् ॥ १७ ॥

अर्थ- दासों का कर्म करनेवाले, नौकर, आचार्य, ऋत्विज् और पुरोहित, वेतन न मिलनेसे हमें छोड रहे हैं यह देख कर तेरे जीवन से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? ॥१७॥

यदि कृत्यं न पश्यामि तवाऽद्याऽहं यथा पुरा ।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १८ ॥

अन्वयः- यदि यथा पुरा अद्य तव श्लाघनीयं यशस्यं च कृत्यं न पश्यामि मे हृदयस्य का शान्तिः ॥ १८ ॥

अर्थ- यदि पहिलेके समान आज तेरा प्रशंसनीय यशस्वी कृत्य एकभी न देखूंगी तो मेरे हृदय को कैसी शान्ति होगी ? ॥ १८ ॥

नेति चेद्ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्येत हृदयं मम ।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥ १९ ॥

अन्वयः- ब्राह्मणं न इति ब्रूयां चेत् मम हृदयं दीर्येत। न हि अहं न च मे भर्ता ब्राह्मणं न इति उक्तवान् ॥ १९ ॥

अर्थ- ब्राह्मण को " नहीं " ऐसा यदि मैं कहूंगी तो मेरा हृदय फट जायगा। न मैंने ना ही मेरे पतिने ब्राह्मण को " नहीं " ऐसा कभी कहा था ॥ १९ ॥

वयमाश्रयणीयाः स्म न श्रोतारः परस्य च ।
साऽन्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २० ॥

अन्वयः— वयं आश्रयणीयाः स्म, न परस्य श्रोतारः । अन्यं आसाद्य जीवन्ती सा जीवितं परित्यक्ष्यामि ॥ २० ॥

अर्थ— हम आश्रय करने योग्य थे, कभी दूसरे के आश्रय चाहने वाले न थे । अब दूसरेके आश्रयसे जीने वाली वह मैं प्राण ही त्याग दूंगी ॥ २० ॥

अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः ।
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान्सञ्जीवयस्व नः ॥ २१ ॥

अन्वयः— अपारे नः पारं भव, अप्लवे नः प्लवः भव । अस्थाने स्थानं कुरुष्व, मृतान् नः संजीवयस्व ॥ २१ ॥

अर्थ— अपार दुःखमें तू हमें पार करने वाला हो, नौकारहित स्थानमें तू हमारी नौका बन । स्थान रहित स्थानमें हमारे लिये स्थान बन, मरे हुए हमको तू जीवित कर ॥ २१ ॥

भावार्थ— तू पुरुष प्रयत्नसे हमारी उन्नति करो ।

सर्वे ते शत्रवः शक्या न चेज्जीवितुमर्हसि ।
अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥ २२ ॥

अन्वयः— ते सर्वे शत्रवः न शक्याः चेत्, अथ ईदृशीं क्लीबां वृत्तिं अभ्युपपद्यसे चेत्, जीवितुं अर्हसि ? ॥ २२ ॥

अर्थ— तेरे सब शत्रु परास्त करना यदि शक्य न हो, किंवा ऐसी दीन वृत्ति से रहनाही तुम्हें मंजूर हो, तो क्या तू जीनेके लिये योग्य हो ? ॥ २२ ॥

निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैनां पापजीविकाम् ।
एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३ ॥

अन्वयः— निर्विण्णात्मा, हतमनाः एतां पापजीविकां मुञ्च । शूरः एकशत्रुवधेन एव विश्रुतिं गच्छति ॥ २३ ॥

अर्थ— खिन्न और दीन तू इस पाप जीवन का त्याग कर । शूर एक शत्रु के वधसे ही कीर्तिमान होता है ॥ २३ ॥

इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ।
माहेन्द्रं च गृहं लेभे लोकानां चेश्वरोऽभवत् ॥ २४ ॥

अन्वयः— इन्द्रः वृत्रवधेन एव महेन्द्रः समपद्यत, च माहेन्द्रं गृहं लेभे, च लोकानां ईश्वरः अभवत् ॥ २४ ॥

अर्थ— इन्द्र वृत्रके वधसे ही महेन्द्र बन गया, और उसने माहेन्द्र भवन प्राप्त किया, तथा वह लोकों का ईश्वर हुआ ॥ २४ ॥

नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान्।
सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥ २५ ॥
यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद्यशः ।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६ ॥

अन्वयः- नाम विश्राव्य, संख्ये दंशितान् शत्रून् आहूय, वरं पुरुषं हत्वा, सेनाग्रं च अपि विद्राव्य॥ २५ ॥ यदैव वीरः सुयुद्धेन महद्यशः लभते तदैव अस्य शत्रवः प्रव्यथन्ते विनमन्ति च ॥ २६ ॥

अर्थ— अपना नाम सुनाकर, युद्धमें घायल हुए शत्रुओंको बुलाकर, उनके श्रेष्ठ वीर पुरुषोंका हनन करके, उनके सेनापति को मारते हैं ॥ २५ ॥ और जब वीर उत्तम युद्ध करके बडा यश प्राप्त करता है तब ही इसके शत्रु घबराते हैं, और नम्र होते हैं ॥ २६ ॥

त्यक्त्वाऽऽत्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः।
अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २७ ॥

अन्वयः— कापुरुषाः जनाः रणे आत्मानं त्यक्त्वा अवशाः (भूत्वा) दक्षं शूरं सर्वकामसमृद्धिभिः तर्पयन्ति स्म ॥ २७ ॥

अर्थ— हीन मनुष्य युद्धमें अपने आपको त्याग कर, परवश होकर, दक्ष शूर पुरुष को सब मनोरथ और समृद्धियोंसे तृप्त करते हैं ॥ २७ ॥

भावार्थ— हीन मनुष्य दक्षतासे युद्ध नहीं करते, पराजित होते हैं, परतंत्र बनते हैं और शत्रुके दक्ष शूर वीर को विजय देते हैं। इस लिये हर एक को उचित है, कि वह ऐसा यत्न करे कि युद्धमें विजयी बने और कभी पराजित न हो।

राज्यं चाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा ।
न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २८ ॥

अन्वयः— साधवः उग्रविभ्रंशं राज्यं, चापि वा जीवितस्य संशयः, लब्धस्य हि शत्रोः शेषं न कुर्वन्ति ॥ २८ ॥

अर्थ— उत्तम लोग चाहे राज्य भ्रष्ट होवे, चाहे जीवनके विषयमें भी संकट होवे, परन्तु हाथमें आये शत्रुको कभी जीवित छोडते नहीं ॥ २८ ॥

स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाऽप्यमृतोपमम् ।
रुद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवाऽरिषु　　॥ २९ ॥

अन्वयः— स्वर्गद्वारोपमं अथवा अमृतोपमं राज्यं एकायनं रुद्धं मत्वा अरिषु उल्मुकः इव पत ॥ २९ ॥

अर्थ— स्वर्गद्वार के समान अथवा अमृतके तुल्य राज्य केवल एक पराक्रम की गतिसे मिलता है यह मान कर शत्रुओंके अन्दर जलती आग के समान घुस जाओ ॥ २९ ॥

जहि शत्रून्रणे राजन्स्वधर्ममनुपालय ।
मा त्वादृशं सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धनम्　　॥ ३० ॥

अन्वयः— हे राजन् ! रणे शत्रून् जहि, स्वधर्मं अनुपालय, शत्रूणां भयवर्धनं त्वा सुकृपणं मा अदृशम् ॥ ३० ॥

अर्थ— हे राजा ! युद्धमें शत्रुओंका नाश कर, अपने धर्मका पालन कर, शत्रुओंके भयको बढाने वाले तुझे मैं दीन बना हुआ न देखूं ॥ ३० ॥

अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम् ।
अपि त्वां नाऽनुपश्येयं दीनाद्दीनमिवाऽऽस्थितम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः— शोचद्भिः असदीयैः, नदद्भिः परैश्च वृतं दीनात् अपि दीनं इव आस्थितं त्वां न अनुपश्येयम् ॥ ३१ ॥

अर्थ— शोक करनेवाले हमारे भाईयोंसे, तथा आनंद करनेवाले शत्रुओंसे घेरा हुआ, दीनसे ही दीन बने हुए के समान तुझे मैं देखना नहीं चाहती ॥ ३१ ॥

हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघ स्वार्थैर्यथा पुरा ।
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः　　॥ ३२ ॥

अन्वयः— यथापुरा स्वार्थैः सौवीरकन्याभिः हृष्य, श्लाघ । अवसन्नः सैन्धवकन्यानां वशं मा गमः ॥ ३२ ॥

अर्थ— पूर्वके समान अपने धनादिसे युक्त होकर सौवीर देशकी कन्याओंसे हर्षित हो, और प्रशंसित होवो। हीन दीन बनकर सिंधुदेश की कन्याओंके वशमें न जा ॥ ३२ ॥

भावार्थ— धनादि कमा कर अपने देशकी कन्यासे ही विवाह करना चाहिये । कभी अपने शत्रुके देशकी कन्यासे विवाह करना नहीं, क्यों कि उस कारण आपत्ति उत्पन्न होना संभव है। पराधीन देशके युवक अपनेको पराजित करनेवाले राजकर्ता की जातीकी स्त्रियों के साथ विवाह न करें।

युवा रूपेण सम्पन्नो विद्ययाऽभिजनेन च ।
यस्त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ।
अधुर्यवच्च वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत् ॥ ३३ ॥

अन्वयः- रूपेण विद्यया अभिजनेन च सम्पन्नः युवा, यशस्वी, लोकविश्रुतः वोढव्ये अधुर्यवत् च त्वादृशः यत् विकुर्वीत तत् मरणं एव मन्ये ॥ ३३ ॥

अर्थ- सुंदर रूप तथा उत्तम विद्यासे युक्त, अनेक मित्रोंसे युक्त, तरुण, यशस्वी, लोकमें प्रख्यात, तेरे जैसा पुरुष जो बैलके समान दूसरेकी आज्ञामें चलता है और कार्य करता है वह मरण ही है ऐसा मैं मानती हूं ॥ ३३ ॥

यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३४ ॥

अन्वयः- यदि त्वां परस्य प्रियवादिनं पृष्ठतः अनुव्रजन्तं वा अनुपश्यामि मे हृदयस्य का शान्तिः ॥ ३४ ॥

अर्थ- यदि मैं तुझे शत्रुसे मीठा भाषण करने वाला अथवा उसके पीछे पीछे चलने वाला देखूंगी तो मेरे हृदयको कैसी शान्ति मिलेगी ? ॥ ३४ ॥

नाऽस्मिञ्जातु कुले जातो गच्छेद्योऽन्यस्य पृष्ठतः ।
न त्वं परस्याऽनुचरस्तात जीवितुमर्हसि । ॥ ३५ ॥

अन्वयः- यः अन्यस्य पृष्ठतः गच्छेत् अस्मिन् कुले जातु न जातः। हे तात ! त्वं परस्य अनुचरः (भूत्वा) जीवितुं न अर्हसि ॥

अर्थ- जो दूसरे के पीछे पीछे चले ऐसा इस कुलमें निःसंदेह कोई भी नहीं उत्पन्न हुआ । हे तात ! तूं शत्रुका सेवक बनकर जीनेके लिये योग्य नहीं है ।

अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत्परिशाश्वतम् ।
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि ।
शाश्वतं चाऽव्ययं चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः— यत् परिशाश्वतं, पूर्वैः पूर्वतरैः, परैः परतरैः प्रोक्तं प्रजापतिविनिर्मितं शाश्वतं, अव्ययं चैव क्षत्रहृदयं अहं वेद ॥ ३६—३७ ॥

अर्थ —जो सदा रहनेवाला, प्राचीन पूर्वकालके पूर्वजोंने कथन किया था, वह प्रजापतिका बनाया हुआ शाश्वत,अविनाशी, क्षत्रहृदय नामक शास्त्र मैं जानती हूं ॥३६-३७॥

यो वै कश्चिदिहाऽऽजातः क्षत्रियः क्षत्रकर्मवित्।
भयाद्वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—इह यः वै कश्चित् क्षत्रकर्मवित् आजातः क्षत्रियः (सः) भयात्, वृत्तिसमीक्षः वा इह कस्यचित् न नमेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—इस लोकमें क्षत्रियके कर्मको जाननेवाला क्षत्रिय के कुलमें उत्पन्न कोईभी उत्तम क्षत्रिय प्राणके भयसे अपनी आजीविका के हेतु किसीके भी सन्मुख नम्र न होवे ॥ ३८ ॥

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—उद्यच्छेत् एव, न नमेत्, हि उद्यमः एव पौरुषं। इह अपर्वणि अपि भज्येत कस्यचित् न नमेत् ॥ ३९ ॥

अर्थ—उद्योग ही करे, न दीन बने, क्योंकि उद्यम ही पौरुष है। चाहे किसी समय मर भी जाय परंतु किसीके सामने सिर न झुकावे ॥ ३९ ॥

मातङ्गो मत्त इव च परीयात्स महामनाः।
ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च सञ्जय ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे सञ्जय! सः महामनाः मत्तः मातङ्गः इव च परीयात् नित्यं ब्राह्मणेभ्यो धर्माय एव च नमेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे संजय! वह बडे मनवाला मत्त हाथी के समान चले, नित्य ब्राह्मणों को दान धर्म करनेके समय ही अपना सिर झुकावे ॥ ४० ॥

नियच्छन्नितरान्वर्णान्विनिघ्नन्सर्वदुष्कृतः।
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥ ४१ ॥ [८६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ जयाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अन्वयः—इतरान् वर्णान् नियच्छन्, सर्वदुष्कृतः विनिघ्नन्, ससहायः, असहायः वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥

अर्थ—इतर वर्णोंको नियमनमें रख कर, सब शत्रुओंका नाश कर, सहायकों के सहित हो या सहायकोंके रहित हो, जीवन रहने तक वैसाही (पूर्वश्लोकमें कहे अनुसार) वर्ताव करे ॥ ४१ ॥

जय इतिहासमें द्वितीय अध्याय समाप्त।

जय इतिहास।

तृतीय अध्याय।

पुत्र उवाच।

कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम्।
मम मातस्त्वकरुणे वीरप्रज्ञे ह्यमर्षणे ॥ १ ॥

अन्वयः— पुत्रः उवाच- हे अकरुणे! वीरप्रज्ञे! अमर्षणे! मम मातः! ते हृदयं कृष्णायसस्य इव संहत्य कृतम् ॥ १ ॥

अर्थ— पुत्र बोले- हे निर्दय, वीर भाव वाली, क्रोधी मेरी माता! तेरा हृदय लोहे कोही मिला मिला कर बनाया है ॥ १ ॥

अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा।
नियोजयसि युद्धाय परमातेव मां तथा ॥ २ ॥

अन्वयः— अहो क्षत्रसमाचारः! यत्र यथा परमाता इतरं इव तथा मां युद्धाय नियोजयसि ॥ २ ॥

अर्थ— हाय क्षत्रियों का आचार! इस धर्ममें दूसरे की माता दूसरेके पुत्रको जैसी कहती है उस प्रकार, मुझे युद्ध को तू नियुक्त करती हो ॥ २ ॥

ईदृशं वचनं ब्रूयाद्भवती पुत्रमेकजम्।
किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ॥ ३ ॥

अन्वयः— एकजं पुत्रं भवती ईदृशं वचनं ब्रूयात्? मां अपश्यन्त्याः ते सर्वया पृथिव्या अपि किं नु ॥ ३ ॥

अर्थ— अपने अकेले एक पुत्रको तुम ऐसे वचन बोल रही हो? मुझे न देखती हुई तू सब पृथ्वीको भी लेकर क्या करोगी? ॥ ३ ॥

किमाभरणकृत्येन किं भोगैर्जीवितेन वा।
मयि वा सङ्गरहते प्रियपुत्रे विशेषतः ॥ ४ ॥

अन्वयः- विशेषतः प्रियपुत्रे मयि सङ्गर-हते आभरणकृत्येन किं? भोगैः जीवितेन वा किम्? ॥ ४ ॥

अर्थ- विशेष करके मेरे जैसे प्रिय पुत्रके युद्धमें मरनेके पश्चात् तेरे आभूषणोंसे क्या और भोग तथा जीनेसे भी क्या बनेगा ? ॥ ४ ॥

मातोवाच ।

सर्वावस्था हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात् ।
तावेवाऽभिसमीक्ष्याऽहं सञ्जय त्वामचूचुदम् ॥ ५ ॥

अन्वयः- माता उवाच- हे तात ! सञ्जय ! विदुषां सर्वावस्थाः हि धर्मार्थकारणात् (भवन्ति) तौ एव अभिसमीक्ष्य अहं त्वां अचूचुदम् ॥ ५ ॥

अर्थ- माता बोली- हे तात सञ्जय ! विद्वानोंकी सभी अवस्थाएं धर्म और अर्थके लिये होती हैं उनको देखकर मैं तुझे प्रेरणा कर रही हूं ॥ ५ ॥

स समीक्ष्य क्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः ।
अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे
असम्भावितरूपस्त्वमानृशंस्यं करिष्यसि ॥ ६ ॥

अन्वयः- अयं सः क्रमोपेतः मुख्यः कालः आगतः, अस्मिन् आगते काले समीक्ष्य कार्यं न प्रतिपद्यसे चेत् असंभावितरूपः त्वं आनृशंस्यं करिष्यसि ॥ ६ ॥

अर्थ— यह वह क्रमसे प्राप्त सबसे अच्छा समय आगया है, इस आये हुए कालमें तु देख भालकर उद्योग न करेगा, तो जगत्में अपमानित होकर तू अत्यंत बुरा कार्य करेगा ॥ ६ ॥

तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि सञ्जय ।
खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ॥ ७ ॥

अन्वयः— हे संजय ! अयशसा स्पृष्टं तं त्वां यदि न ब्रूयां तत् निःसामर्थ्यं अहेतुकं खरीवात्सल्यं आहुः ॥ ७ ॥

अर्थ— हे संजय ! अयशको प्राप्त हुए तुझको यदि मैं उपदेश न करूंगी, तो निःसंदेह उस मेरे आचरणको सामर्थ्यहीन, निरर्थक तथा गधीकी प्रीतिके समान प्रीति करना कहेंगे ॥ ७ ॥

सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम् ॥ ८ ॥

अन्वयः- मूर्खनिषेवितं सद्भिः विगर्हितं मार्गं त्यज ॥ ८ ॥

अर्थ- मूर्खों द्वारा सेवित और सज्जनों द्वारा निंदित मार्गका त्याग कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— अर्थात् पुरुषार्थ कर और यश का भागी बन ।

अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः ।
तच्चे स्याद्यदि सद्वृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ॥ ९ ॥

अन्वयः– अविद्या वै महती अस्ति यां इमां प्रजाः संश्रिताः। तव यदि सद्वृत्तं स्यात् तेन त्वं मे प्रियः भवेः ॥ ९ ॥

अर्थ– अज्ञान बहुतही है, जिस अज्ञानका मनुष्य मात्र आश्रय करते हैं। इस लिये यदि तेरा आचरण उत्तम होगा तभी तू मुझे प्रिय हो जायगा ॥ ९ ॥

भावार्थ– जगत्के अन्दर अज्ञान बहुत है और प्रायः बहुतसे मनुष्य अज्ञानको ही ज्ञान मानकर उसी अज्ञानमें फंसते रहते हैं। अतः हे पुत्र! तू उस अज्ञान को छोडदे, और ज्ञान प्राप्त करके सदाचारी और पुरुषार्थी बन, जिससे तेरा यश जगतमें प्रकाशित हो जायगा।

धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथञ्चन ।
दैवमानुषयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥ १० ॥

अन्वयः- धर्मार्थगुणयुक्तेन दैवमानुषयुक्तेन,सद्भिः आचरितेन च कथंचन इतरेण न।१०।

अर्थ— धर्म अर्थ आदि गुणोंसे युक्त, दिव्य और मानुष पुरुषार्थोंसे युक्त, तथा सदाचारी पुरुष जिसका आचरण करते हैं, वैसे आचारसे ही [तू मुझे प्रिय होगा,] किसी अन्य आचरणसे नहीं ॥ १० ॥

भावार्थ- माताको वही पुत्र अनंद देनेवाला लगता है कि जो धर्म अर्थ आदि पुरुषार्थ करता हो, जिसकी प्रशंसा देवों और मानवों में होती हो, तथा जिसका आचरण सदाचारी पुरुषों के समान हो। इसलिये हरएक सुपुत्र को योग्य है कि वह ऐसा सुयोग्य बने और उत्तम यशःप्राप्तिके कर्म करे ॥

यो ह्येवमविनीतेन रमते पुत्रनप्तृणा ।
अनुत्थानवता चापि दुर्विनीतेन दुर्धिया ।
रमते यस्तु पुत्रेण मोघं तस्य प्रजाफलम् ॥ ११ ॥

अन्वयः— यः हि एवं अविनीतेन पुत्रनप्तृणा रमते च यः अनुत्थानवता,दुर्विनीतेन, दुर्धिया पुत्रेण रमते तस्य प्रजाफलं मोघम् ॥ ११ ॥

अर्थ— जो इसप्रकार विनयरहित पुत्रपौत्रसे रमता है तथा जो चढाई न करनेवाले विनयरहित, दुर्बुद्धि पुत्रसे रमता है, उसका प्रजाफल व्यर्थ है ॥ ११ ॥

भावार्थ- विनयशाली, सुबुद्धि, शत्रुपर चढाई करके विजय प्राप्त करने वाले पुत्रसे ही मातापिता को सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है। परंतु विनयरहित, दुष्टबुद्धि, तथा निरुत्साही पुत्रसे मातापिताओंको दुःखके सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होगा।

अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च।
सुखं नैवेह नाऽमुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ॥ १२ ॥

अन्वयः— कर्माणि अकुर्वन्तः, निन्दितानि कुर्वन्तः च पुरुषाधमाः न एव इह, न अमुत्र सुखं लभन्ते ॥ १२ ॥

अर्थ— पुरुषार्थ न करनेवाले, परंतु निंदित कर्म करने वाले नीच पुरुष न यहां और नाही परलोकमें सुख को प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुष सदा उद्यम करते हैं और निंदित कर्म न करते हुए प्रशस्त कर्म ही करते रहते हैं वे ही सुख को प्राप्त करते हैं।

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च।
जयन्वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ॥ १३ ॥

अन्वयः— हे सञ्जय! इह युद्धाय जयाय च क्षत्रियः सृष्टः। जयन् वा वध्यमानः वा इन्द्रसलोकतां प्राप्नोति ॥ १३ ॥

अर्थ— हे सञ्जय! इसलोकमें युद्धके लिये तथा जयके लिये ही क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है। वह यहां जय प्राप्त करके अथवा वधको प्राप्त होके इन्द्रलोक को प्राप्त करता है ॥१३॥

भावार्थ—इस लोकमें जो क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है वह युद्ध करके अपने शत्रुका पराजय करनेके लिये और विजय करनेके लिये ही हुआ है। चैन और विलास करनेके लिये नहीं हुआ है। यदि इसको युद्धमें जय मिला अथवा युद्धमें इसका वध भी हुआ तो दोनों से वह सीधा स्वर्ग का भागी होता है। इसलिये अपने वध की पर्वाह न करता हुआ क्षत्रिय युद्धके लिये तैयार रहे।

न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद्विद्यते सुखम् ॥
यदमित्रान्वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमेधते ॥ १४ ॥

अन्वयः— क्षत्रियः अमित्रान् वशे कृत्वा यत् सुखं एधते, तत् सुखं दिवि पुण्ये शक्रभवने न विद्यते ॥ १४ ॥

अर्थ— क्षत्रियको शत्रुओंको वशमें करनेसे जो सुख मिलता है, वह सुख स्वर्गमें पुण्य कारक इन्द्र भवनमें भी नहीं मिलता ॥ १४ ॥

भावार्थ— शत्रुओंको अपने वशमें करनेसे जो सुख मिलता है वह स्वर्ग सुखसे भी अधिक है। इसलिये हरएक क्षत्रिय को उचित है कि वह अपने शत्रुओंको वशमें करनेका यत्न करे।

मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना।
निकृतेनेह बहुशः शत्रून्प्रतिजिगीषया ॥ १५ ॥

अन्वयः- इह बहुशः निकृतेन मनस्विना पुरुषेण मन्युना दह्यमानेन शत्रून् प्रति जिगीषया (प्रस्थातव्यम्) ॥ १५ ॥

अर्थ-- यहां बहुतवार पराजित हुए समझदार परंतु क्रोधसे जलते हुए पुरुषने शत्रुओंके ऊपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे ही चढाई करना चाहिये ॥ १५ ॥

भावार्थ-- यहां जिसका वारंवार पराजय हुआ है और उस कारण जिसका अनेक प्रकारसे नुकसान हुआ है ऐसे पराजित परंतु विचारी पुरुषको उचित है कि वह शत्रुके विषयके क्रोधसे जलते हुए अंतःकरणसे शत्रुपर चढाई करनेकी इच्छा करे और ऐसी चढाईकी तैयारी करे कि जिससे उसका विजय निश्चयसे हो जाय।

आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य च।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत् ॥ १६ ॥

अन्वयः —आत्मानं परित्यज्य वा शत्रुं विनिपात्य वा अतः अन्येन प्रकारेण अस्य शान्तिः कुतः भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ— अपना नाश हो जाय अथवा शत्रुका निमूलन हो जाय, इससे भिन्न तीसरे प्रकारसे इसकी शांति कैसी बनेगी ॥ १६ ॥

इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति।
यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याऽल्पमप्रियम् ॥ १७ ॥

अन्वयः —इह हि प्राज्ञः पुरुषः अप्रियं स्वल्पं इच्छति। यस्य स्वल्पं प्रियं ध्रुवं लोके तस्य स्वल्पं अप्रियम् ॥ १७ ॥

अर्थ— इसलोकमें ज्ञानी पुरुष अप्रिय थोडा ही चाहता है। जिसको थोडा ही प्रिय लगता है, निश्चयसे लोकमें उसको थोडाही आप्रिय मिलता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— इस लोकमें कोईभी मनुष्य अप्रिय वस्तु बहुत मिले ऐसा मनसे नहीं चाहता-है। हरएक मनुष्य प्रिय वस्तु बहुत मिले और अप्रिय कम मिले ऐसाही चाहते हैं। जो प्रिय वस्तु थोडी चाहता है उसको अप्रिय भी थोडाही मिलता है। परंतु जो प्रिय वस्तु अधिक चाहता है उसीको कष्ट अधिक होते हैं। परंतु पुरुषार्थी मनुष्य अधिक उद्यम करके अधिक सुख प्राप्त करता है और यशस्वी होता है।

प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम् ।
ध्रुवं चाऽभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—पुरुषः प्रियाभावात् शोभनं नैव प्राप्नोति सागरं गत्वा गङ्गा इव ध्रुवं अभावं च अभ्येति ॥ १८ ॥

अर्थ—मनुष्यको प्रियवस्तु न मिलनेसे आनंद नहीं मिलता है। जिस प्रकार समुद्रको जाकर गंगा अभावको प्राप्त करती है ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्यको प्रिय वस्तु अधिक मिलनेसे ही आनंद प्राप्त होता है। जो मनुष्य अल्पसे संतुष्ट होता है उसकी अवस्था अंतमें वैसी होती है जैसी गंगा नीचे नीचे जाते हुए अंतमें सागरमें पहुंचकर स्वयं अपने आपको भी खो बैठती है। अल्प संतुष्ट मनुष्य इसप्रकार अपने आपको भी नष्ट कर देता है। इसलिये कोई भी अल्प संतुष्ट न बने। प्रत्युत अधिक पुरुषार्थ करके अधिक लाभ प्राप्त करनेका यत्न करे।

पुत्र उवाच।

नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः ।
कारुण्यमेवाऽत्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे मातः! विशेषतः पुत्रे त्वया इयं मतिः न वाच्या। अत्र जडमूकवत् भूत्वा इह कारुण्यं एव पश्य ॥ १९ ॥

अर्थ—हे माता! विशेष करके अपने पुत्रके विषयमें ऐसा बोलना तुमको योग्य नहीं है। यहां जड अथवा मूकके समान बनकर करुणा ही देखो। अर्थात् पुत्रपर दया ही करना तुमको योग्य है ॥ १९ ॥

मातोवाच।

अतो मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि ।
चोद्यं मां चोदयस्येतद्भृशं वै चोदयामि ते ॥ २० ॥

अन्वयः—अतः मे भूयसी नन्दिः यत् एवं अनुपश्यसि। मां चोद्यं चोदयसि वै ते एतत् भृशं चोदयामि ॥ २० ॥

अर्थ—माता बोली-इससे मुझे बडा आनंद होता है, कि तुम ऐसी बात कर रहे हो। मुझे जो तुम बोल रहे हो उस विषयमें उचित प्रेरणा मैं तुम्हें अब करती हूं ॥ २० ॥

अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवान् ।
अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्रभावितमेव ते ॥ २१ ॥

अन्वयः— अहं कृच्छ्रभावितं एव ते विजयं पश्यामि अथ सर्वसैन्धवान् हत्वा त्वां पूजयिष्यामि वै ॥ २१ ॥

अर्थ—मैं कष्टसे प्राप्त हुए तेरे विजय को देखती हूं । और सब सिंधुदेशके वीरोंका हनन करनेके बादही तेरा सत्कार मैं करूंगी ॥ २१ ॥

भावार्थ—तेरे विजय की ही मैं प्रतीक्षा कर रही हूं । मुझे निश्चय है कि यदि तू प्रयत्न करेगा तो तुम्हारा विजय निःसंदेह होगा । तुम्हारे शत्रुके वीरोंका नाश जब तुम करोगे तत् पश्चात् ही मैं तुम्हारी प्रशंसा कर सकूंगी, उससे पूर्व नहीं ।

पुत्र उवाच ।

अकोशस्याऽसहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम ।
इत्यवस्थां विदित्वैतामात्मनाऽऽत्मनि दारुणाम् ।
राज्याद्भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिव दुष्कृतः ॥२२ ॥

अन्वयः— पुत्रः उवाच- अकोशस्य असहायस्य मम कुतः जयः सिद्धिः (च) इति आत्मनि एतां दारुणां अवस्थां आत्मना विदित्वा दुष्कृतः त्रिदिवात् इव मे राज्यात् भावः निवृत्तः ॥ २२ ॥

अर्थ-पुत्र बोला - जिसके पास (कोश) धनसंग्रह नहीं है, और जिसके पास कोई सहायक नहीं हैं ऐसे मेरा जय कैसा होगा और मुझे सिद्धिभी किस प्रकार मिलेगी? इस प्रकार अपने अंदर यह भयानक अवस्था स्वयं जान कर मेरा राज्यके संबंधका भावही नष्ट हुआ है जैसा पापकर्म करनेवाले मनुष्यका स्वर्ग विषयक भाव नष्ट हो जाता है ॥ २२॥

भावार्थ-जिस प्रकार पापी पुरुषको स्वर्गकी आशा नहीं होती है, उसी प्रकार मुझे राज्यकी भी आशा नहीं,है क्योंकि न मेरे पास धनसंग्रह है और न मेरे पास कोई सहायक हैं । इस लिये राज्य की आशा कैसी की जा सकती है ? बातोंसे राज्य थोडाही मिल सकता है ? वह युद्धसे ही मिलेगा और युद्ध तो धन और सहायकों के विना हो नहीं सकता, इस लिये मैं उदास हो गया हूं ।

ईदृशं भवती कञ्चिदुपायमनुपश्यति ॥ २३ ॥
तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक्प्रब्रूहि पृच्छते ।
करिष्यामि हि तत्सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ २४ ॥

अन्वयः- हे परिणतप्रज्ञे ! भवती ईदृशं कंचित् उपायं अनुपश्यति, पृच्छते मे तत् सम्यक् प्रब्रूहि, तत् सर्वं अनुशासनं यथावत् करिष्यामि हि ॥ २३-२४ ॥

अर्थ- हे महाबुद्धिमती ! तुम यदि ऐसा कोई उपाय जानती हो (कि जिससे मैं कृत कार्य हो सकूं) तो पूछनेवाले मुझसे ठीक प्रकार कहो, तुम्हारी वह आज्ञा मैं यथावत् पालन करूंगा ॥ २३-२४ ॥

भावार्थ- मुझे कोई आशा नहीं है, परंतु यदि तुम्हारे समझमें मेरी इस अवस्थामें भी राज्य प्राप्त करनेका कोई उपाय हो तो वह मुझे कह दो। मैं उस दिशासे अवश्य यत्न करूंगा।

मातोवाच ।

पुत्र नाऽऽत्माऽवमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चाऽपरे ॥
अमर्षेणैव चाप्यर्था नाऽऽरब्धव्याः सुबालिशैः ॥२५॥

अन्वयः— माता उवाच- हे पुत्र ! पूर्वाभिः असमृद्धिभिः आत्मा न अवमन्तव्यः। हि अभूत्वा अर्थाः भवंति, अपरे भूत्वा नश्यन्ति च । सुबालिशैः अपि अमर्षेण अर्थाः न आरब्धव्याः एव ॥ २५ ॥

अर्थ-माता बोली-हे पुत्र ! पूर्व विपत्तियोंके कारण अपने आत्माकी तुच्छता नहीं करनी चाहिये क्योंकि, धन न होनेपरभी प्राप्त होता है और होनेपर भी नष्ट हो जाता है। मूर्ख लोगोंको केवल क्रोधके वशमें हो कर धन प्राप्तिके उपायोंका अवलंबन करना योग्य नहीं है ॥ २५ ॥

भावार्थ- विपत्ति बहुत देरतक रहनेपर भी अपने आपको तुच्छ समझना योग्य नहीं। क्यों कि पहिले धन हुआ तो भी नष्ट हो जाता है और नष्ट होनेपर भी प्राप्त होता है। इस लिये केवल विकारवश होकर धन प्राप्तिका यत्न करना नहीं चाहिये, प्रत्युत सोच समझ कर ही मार्गका निश्चय करके ही यत्न करना योग्य है। ऐसा करनेसे ही सिद्धि मिल सकती है।

सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता।
अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च॥ २६ ॥

अन्वयः- हे तात! सर्वेषां कर्मणां फले नित्यं अनित्यता। अनित्यं इति जानन्तः न भवन्ति भवन्ति च॥ २६॥

अर्थ- हे प्रिय! सर्व कर्मोंके फलों में सदा अनित्यता है। कर्मोंका फल अनित्य है ऐसा जान कर जो कर्म करते हैं, उनके फल होते भी हैं और नहीं भी होते॥ २६॥

भावार्थ- कर्म करना मनुष्यका अधिकार है, परंतु फल पाना उसके अधिकार में नहीं है। इस कारण कर्मका उचित फल मिलता है अथवा नहीं भी मिलता। तथापि कर्मोंका फल अनित्य है यह जानते हुए भी मनुष्यको प्रयत्न करना योग्य ही है। संभव है कि उसका योग्य फल मिलेगा ही, परंतु यदि न मिला तो भी पुनः यत्न करना योग्य है। परंतु पुरुषार्थ छोडदेना कदापि योग्य नहीं है।

अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते।
ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम्॥ २७॥
अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा।

अन्वयः- अथ ये नैव कुर्वन्ति ते जातु नैव भवन्ति। अनीहायां ऐकगुण्यं (यत्) अभावः कर्मणां फलम्॥ अथ ईहायां द्वैगुण्यं, फलं भवति न वा (भवति)॥ २७॥

अर्थ- परंतु जो प्रयत्न नहीं करते वे कदापि कृत कार्य नहीं होते। प्रयत्न न करने की अवस्थामें फल कदापि मिलेगा नहीं, परंतु करनेपर दो संभव हैं, कदाचित मिलेगा, कदाचित् नहीं॥ २७॥

भावार्थ— कर्मका फल अनिश्चित है ऐसा मानने पर यदि कोई मनुष्य पुरुषार्थ न करेगा तो उसको कदापि सिद्धि प्राप्त नहीं होगी। प्रयत्न न करनेपर फल मिलेगाही नहीं, परंतु पुरुषार्थ करनेपर संभव है कि फल मिलेगा वा न मिलेगा। इसीलिये प्रयत्न करना चाहिये और फल मिलनेकी संभावना उत्पन्न करनी चाहिये। प्रयत्न न करनेकी अपेक्षा प्रयत्न करनेकी श्रेष्ठता निःसंदेह है।

यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता।
नुदेद्वृद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज॥ २८॥

अन्वयः- हे नृपात्मज! यस्य सर्वार्थानां अनित्यता प्राक् एव विदिता सः प्रतिकूले वृद्धिसमृद्धी नुदेत्॥ २८॥

अर्थ– हे राजपुत्र ! सब अर्थोंकी अनित्यता जिसको पहिले से ही विदित है वह प्रयत्नसे अपने कष्टोंको और शत्रुकी समृद्धिको दूर करे ॥ २८ ॥

भावार्थ– सब कार्य अनित्य हैं यह जानकर हरएक मनुष्यको उचित है, कि वह प्रयत्न करके अपने कष्टोंको कम करनेका यत्न करे और शत्रुकी समृद्धिको भी कम करे। अर्थात् अपना सुख बढावे और अपना धनभी बढावे ।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥ २९ ॥

अन्वयः– भविष्यति इति मनः कृत्वा एव अव्यथैः सततं उत्थातव्यं जागृतव्यं भूतिकर्मसु योक्तव्यम् ॥ २९ ॥

अर्थ– होगा ऐसा मनका निश्चय करके दुःख न करने वाले लोगोंको सतत उठना, जागना और उन्नतिके कर्मोंमें दत्तचित्त होना चाहिये ॥ २९ ॥

भावार्थ– " कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी " ऐसा मन का निश्चय करके ही उत्साहसे कर्म करनेके लिये उठना चाहिये, जागते हुए अपनी अवस्थाका विचार करना चाहिये और उन्नतिके कार्योंमें एकाग्रतासे लगना चाहिये ।

मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह ।
प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक ॥ ३० ॥
अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥ ३१ ॥

अन्वयः– हे पुत्रक ! ईश्वरैः सह ब्राह्मणान् मंगलानि च पुरस्कृत्य प्राज्ञस्य नृपतेः आशु वृद्धिः भवति ॥ प्राचीं दिवाकरः इव तं लक्ष्मीः अभिवर्तति ॥ ३०–३१ ॥

अर्थ– हे पुत्र ! देवताओंके साथ ब्राह्मणोंका तथा मंगल कर्मोंका पुरस्कार करनेसे बुद्धिमान राजाकी शीघ्र ही वृद्धि होती है । पूर्व दिशा को सूर्य प्राप्त होनेके समान उसके पास लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ ३०–३१ ॥

भावार्थ– देवगणोंका तथा ज्ञानियोंका सत्कार करने से तथा कल्याण करने वाले शुभ कर्म ही करनेसे निश्चयसे सिद्धि मिलती है ।

निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च ।
अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥ ३२ ॥
पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहार्हसि ।

अन्वयः– निदर्शनानि, उपायान्, बहूनि उद्धर्षणानि च पश्यामि अनुदर्शितः रूपः असि, पौरुषं कुरु, इह अभिप्रेतं पुरुषार्थं समाहर्तुं अर्हसि ॥ ३२ ॥

अर्थ- यह युक्तिवाद, उपाय, और बहुतसे प्रमाण जो मैं देखती हूं, उनके लिये तू योग्य हो, इसलिये पुरुषार्थ कर और यहां इष्ट उद्यम करनेके लिये तू योग्य है ॥ ३२॥

क्रुद्धाँल्लुब्धान्परिक्षीणानवलिप्तान्विमानितान् ।
स्पर्धिनश्चैव ये केचित्तान्युक्त उपधारय ॥ ३३ ॥

अन्वयः -- क्रुद्धान् लुब्धान् परिक्षिणान् अवलिप्तान् विमानितान् ये केचित् स्पर्धिनः तान् युक्तः उपधारय ॥ ३३ ॥

अर्थ- क्रोधी, लोभी, क्षीण, घमंडी, अपमानित तथा जो स्पर्धा करनेवाले होंगे उनको युक्तिसे मिलालो ॥ ३३ ॥

भावार्थ - जो लोग तुम्हारे शत्रुपर क्रोधित हुए हैं, जो लोग लोभसे वशमें आनेवाले हैं, जो शत्रुद्वारा क्षीण बने हैं, जो गर्व करके उनसे दूर रहते हैं, जो शत्रुसे अपमानित हो चुके हैं तथा जो शत्रुसे लडना चाहते हैं उनको युक्ति प्रयुक्तिसे वशमें करो और उनको मिला कर अपना बल बढाओ। जो शत्रुपर क्रोध करते हैं उनके साथ प्रेमका भाषण करो, जो लोभी हों उनको प्रलोभन दो, जो क्षीण हुए हैं उनको धन दो, जो गर्व करते हैं उनकी स्तुति करो और जो अपमानित हुए हैं उनसे योग्य बर्ताव करो, तथा जो शत्रुसे स्पर्धा करते हैं उनको अपने पक्षमें मिलाओ। इस प्रकार तुम्हारा पक्ष बढ सकता है और तुम बलवान बन सकते हो।

एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ।
महावेग इवोद्धूतो मातरिश्वा बलाहकान ॥ ३४ ॥

अन्वयः - एतेन प्रकारेण उद्धूतः महावेगः मातरिश्वा बलाहकान् इव त्वं महतः गणान् भेत्स्यसे ॥ ३४ ॥

अर्थ— वेगसे चले हुए महा झंझावातके द्वारा जैसे मेघ दूर होते हैं उस प्रकार तू शत्रुके बडे समूहोंको भेदन कर सकोगे ॥ ३४ ॥

तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्पोत्थायी प्रियंवदः ॥
ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः— तेषां अग्रप्रदायी कल्पोत्थायी प्रियंवदः स्याः, ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति च ध्रुवं पुरो धास्यन्ति ॥ ३५ ॥

अर्थ-- उनको पहिले वेतन देते रहो, विचारकरके चढाई करनेवाला बनो और उनसे सदा प्रियभाषण करो, तब वे तेरा प्रिय करेंगे और तुम्हेंही अपना नेता बनायेंगे ॥ ३५॥

भावार्थ— सहायकों का वेतन उचित समयपर देना चाहिये, दो दो मास की देरी करनेसे कार्य कर्ता लोग बिगड जाते हैं, उनसे सदा प्रिय भाषण करना चाहिये, तथा विचार करके ही शत्रुपर योग्य समयपर चढाई करनी चाहिये। तब सहायक संतुष्ट रहते हैं, दक्षतासे कार्य करते हैं और उसीके पीछे रह कर सब कार्य करते हैं।

कल्पोत्थायी— विचारसे चढाई करनेवाला,

अग्रप्रदायी— वेतन समयपर किंवा अन्योंके पूर्व देनेवाला।

प्रियंवदः— प्रिय बोलनेवाला।

यदैव शत्रुर्जानीयात्सपत्नं त्यक्तजीवितम्।
तदैवाऽस्मादुद्विजते सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥ ३६ ॥

अन्वयः- शत्रुः यदैव सपत्नं त्यक्तजीवितं जानीयात् तदैव वेश्मगतात् सर्पात् इव अस्मात् उद्विजते ॥ ३६ ॥

अर्थ-शत्रु जब जानेगा कि मेरा वैरी प्राणोंकी आशा छोड कर (युद्धके लिये सिद्ध है) तब ही, घरमें वास करने वाले सांप से डरनेके समान, उससे डरेगा ॥ ३६ ॥

भावार्थ — प्राणोंकी आशा छोडकर युद्ध करनेकी तैयारी करनेपर ही शत्रुको भय उत्पन्न हो सकता है।

तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि।
निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद्भविष्यति ॥ ३७ ॥

अन्वयः— तं पराक्रान्तं विदित्वा यदि वशे न कुरुते, निर्वादैः एनं निर्वदेत्, अन्ततः तत् भविष्यति ॥ ३७ ॥

अर्थ-शत्रुको बलवान् जान कर यदि उसको वश करनेका यत्न न करेगा, तो साम दान आदि उपायों से उसको अपने अनुकूल बनानेका यत्न करे, इसका फल अंतमें वही होगा ॥ ३७ ॥

भावार्थ- यदि बलवान शत्रुको बलसे वश करना नहीं हो सकता, तो उसको साम दान आदिसे अपने अनुकूल बना लेना। इसका भी वैसा ही फल निकल आवेगा अर्थात् कालान्तर से वही शत्रु अपने वशमें आवेगा।

निर्वादादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति।
धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाऽऽश्रयन्ति च ॥३८॥

अन्वयः-निर्वादात् आस्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिः भविष्यति। हि धनवन्तं मित्राणि भजन्ते आश्रयन्ति च ॥ ३८ ॥

अर्थ – संधिसे शांतिस्थान प्राप्त होनेपर धन की वृद्धि होगी। क्यों कि धनवान को ही मित्र मिलते और आश्रित होते हैं ॥ ३८ ॥

भावार्थ – पूर्वोक्त सामदानादि उपायोंका आश्रय करके एक बार अपने स्थानपर स्थिर हो जानेसे अनेक उद्योग करके धन कमाना हो सकता है। धन प्राप्त होनेसे ही मित्र बहुत मिल सकते हैं और धनके कारण ही अनेक लोग आश्रय करनेके लिये आ-जाते हैं।

स्खलितार्थं पुनस्तानि सन्त्यजन्ति च बान्धवाः ।
अप्यस्मिन्नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम्॥ ३९ ॥

अन्वयः - तानि पुनः स्खलितार्थं सन्त्यजन्ति, बान्धवाः अपि अस्मिन् न आश्वसन्ते तादृशं जुगुप्सन्ते च ॥ ३९ ॥

अर्थ – वेही मित्रादि फिर धनहीनको त्यागदेते हैं, बंधु बांधव भी उसके पास आश्रय के लिये नहीं आते, इतनाही नहीं प्रत्युत उसकी निंदा भी करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ – धन प्राप्त होनेपर जिस कारण लोग आश्रय करते हैं उसी कारण धन हीन न होजानेपर उसका आश्रय छोड देते हैं। धन हीन की सब लोग निंदा करते हैं। इस कारण राजाको धन अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति ।
अतः सम्भाव्यमेवैतद्यद्राज्यं प्राप्नुयादिति ॥ ४० ॥ [१२६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ जयाख्याने तृतीयोऽध्यायः ।

अन्वयः - यः शत्रुं सहायं कृत्वा, विश्वासं उपगच्छति, "अतः यत् राज्यं प्राप्नुयात्" इति एतत् संभाव्यं एव ॥ ४० ॥

अर्थ - जो शत्रुको सहाय्यता करके, उसका विश्वास करता है और समझता है कि "उससे मुझे राज्य मिलेगा," तो यह केवल आशा मात्र ही है ॥ ४० ॥

भावार्थ - शत्रुकी सहायता करके उसपर अपने भविष्यकी उन्नतिके लिये विश्वास करना मूढता है। जो समझते हैं कि शत्रुकी कृपासे अपनेको राज्यादि धन मिलेगा वे भूल करते हैं। यद्यपि शत्रु कहता रहता है कि तुम्हारी योग्यता बढ जानेपर अपना राज्य तुमको दिया जायगा, तथापि यह कथन विश्वास करने योग्य नहीं है। इस प्रकार की आशा करना व्यर्थ है क्यों कि कोई शत्रु ऐसा कभी नहीं करेगा।

जय इतिहासमें तृतीय अध्याय समाप्त।

जय इतिहास।

चतुर्थ अध्याय।

मातोवाच।

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याञ्चिदापदि।
अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥ १ ॥

अन्वयः – माता उवाच – राज्ञा जातु कस्यांचित् आपदि नैव दरः कार्यः। अथ दीर्णः स्यात् चेत् अपि दीर्णवत् नैव वर्तेत ॥ १ ॥

अर्थ– माता बोली–राजाको सच मुच किसी भी आपत्तिमें डरना नहीं चाहिये। और यदि मनमें डर भी जावे तो अपना डरनेका भाव बाहर बताना नहीं चाहिये ॥१॥

भावार्थ– आपत्ति आनेपर उस आपत्तिके कारण डरना या हताश होना योग्य नहीं है। धैर्य धारण करके ही आगे बढना योग्य है। यदि किसी कारण मनमें डर उत्पन्न हुआ, तो भी अपना डरजाना बाहर प्रकाशित करना योग्य नहीं है। बाहर ऐसाही व्यवहार करना चाहिये कि बिलकुल डर उत्पन्नही नहीं हुआ है ॥

दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवाऽनुदीर्यते।
राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक्कुर्वन्ति ते मतीः ॥ २ ॥

अन्वयः–हि राजानं दीर्णं दृष्ट्वा राष्ट्रं, बलं, अमात्याः च सर्वं एव अनुदीर्यते। ते मतीः पृथक् कुर्वन्ति ॥ २ ॥

अर्थ– क्योंकि राजा के डर जानेसे सब राष्ट्र, सैन्य, मंत्री आदि सब भयभीत हो जाते हैं और वे अपनी बुद्धि प्रतिकूल बना लेते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ–राजा डर गया है, यह बात प्रकट हो जानेसे सब राष्ट्र, सब सैनिक और सब मंत्री जन भी डर जाते हैं, इतना ही नहीं प्रत्युत वे उसके विरुद्ध विचार भी करने लगते हैं।

शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः ।
अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद्विमानिताः ॥ ३ ॥

अन्वयः-एके शत्रून् प्रपद्यन्ते, अपरे पुनः प्रजहति, अन्ये तु ये पुरस्तात् विमानिताः (ते) तु प्रजिहीर्षन्ति ॥ ३ ॥

अर्थ- (राजाके डर जानेपर) कई शत्रुका आश्रय करते हैं, कई फिर उसे छोड देते हैं; और पूर्व कालमें जिनका अपमान हुआ था ऐसे विरोधी लोग विरोध करनेके लिये उठ खडे हो जाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ-राजाके डर जाने से स्वराष्ट्र के लोगोंमें से कई उस राजाको छोड कर शत्रुके पास जा कर उसके आश्रयसे रहने लगते हैं, और कई उसे छोड देते हैं। इससे भी अधिक कष्ट की यह बात है; कि पूर्व वैभव के समय जिनका अपमान इस राजासे हुआ था; वे इस अवसर पर विरोध करनेके लिये सिद्ध होते हैं। इस लिये विपत्तिमें डरना योग्य नहीं है ।

य एवाऽत्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते ।
अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इला इव ॥ ४ ॥

अन्वयः- ये एव अशक्तयः स्वस्तिकामाः अत्यंतसुहृदः ते बद्धवत्साः इलाः इव एनं पर्युपासते ॥ ४ ॥

अर्थ- परंतु जो राजाके असमर्थ हो जानेपर भी उसके कल्याणका विचार करते रहते हैं ऐसे अत्यंत मित्र होते हैं, वे जिसका बछडा बांधा है उस धेनुके समान, इसके पास रहते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ-- परंतु जो सच्चे मित्र होते हैं, वे विपत्ति आनेपर भी उसे नहीं छोडते, प्रत्युत उसके हित करने का ही प्रयत्न करते रहते हैं। सच्चे मित्रोंकी परीक्षा इसी समय हो जाती है ॥

शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बान्धवान् ।
अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ॥ ५ ॥

अन्वयः— पतितान् बांधवान् इव ते शोचन्तं अनुशोचन्ति । पूर्वं अपि ते पूजिताः, अपि ते सुहृदः मताः ॥ ५ ॥

अर्थ- पतित बंधुओंके विषयमें जैसा शोक किया जाता है उस प्रकार राजाकी हीन अवस्था देख कर वे दुःखी होते हैं। वे ही सन्मान के लिये योग्य हैं, क्योंकि वे ही सच्चे मित्र हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—राजाकी हीन स्थितिमें जो आश्रित लोग उसे छोडते नहीं, और उसकी भलाईके लिये यत्न करते हैं, वे ही उसके सच्चे मित्र हैं, ऐसा समझना चाहिये, क्योंकि विपत्कालमें ही मित्रोंकी परीक्षा होती है। जो विपत्कालमें सहायता करते हैं वे ही सच्चे मित्र हैं और वेही सन्मान के लिये योग्य समझने चाहिये।

ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः।
मा दीदरस्त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः ॥ ६ ॥

अन्वयः- ये व्यसनं ईयुषः राज्ञः राष्ट्रं अभिमन्यन्ते,त्वं सुहृदः मा दीदरः, दीर्णं त्वां मा प्रहासिषुः ॥ ६ ॥

अर्थ — जो कष्टमें फंसे राजाके राष्ट्रकी अभिमानसे रक्षा करते हैं, उन मित्रोंको तू मत डराओ, तथा तुमको डरे हुए देख कर वे न चले जावें ॥ ६ ॥

भावार्थ – कष्टके समय राजाकी, उसके राष्ट्रकी अथवा उसके संमानकी जो रक्षा करते रहते हैं, तथा उनके विषयमें जिनको आदर रहता है, वे ही सच्चे मित्र हैं, उनका कभी अपमान करना योग्य नहीं है, क्यों कि संभव है कि अपमान करनेपर ऐसे कुल मित्र दूर होंगे और उनके दूर होनेसे अपनी शक्तिही नष्ट हो जायगी।

प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव।
विदधत्या समाश्वासमुक्तं तेजोविवृद्धये ॥ ७ ॥

अन्वयः- तव प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या समाश्वासं विदधत्या मया तेजोविवृद्धये उक्तम् ॥ ७ ॥

अर्थ- तुम्हारे प्रभाव पराक्रम और बुद्धिको जानने की इच्छासे, तथा तुम्हारा उत्साह बढानेके लिये ही जो मैंने यह कहा है (वह तुम्हारा तेज बढानेवाला होवे) ॥७॥

भावार्थ— जो इस समयतक उपदेश कियागया है उसके अनुसार आचरण करनेमें प्रभाव, पौरुष, बुद्धि, आशा, उत्साह और तेजस्विता निःसंदेह बढ सकती है।

यदेतत्संविजानासि यदि सम्यग्ब्रवीम्यहम्।
कृत्वाऽसौम्यमिवाऽऽत्मानं जयायोत्तिष्ठ सञ्जय ॥ ८ ॥

अन्वयः— हे सञ्जय! यत् एतत् संविजानासि, यदि अहं सम्यक् ब्रवीमि, आत्मानं असौम्यं इव कृत्वा जयाय उत्तिष्ठ ॥ ८ ॥

अर्थ— हे संजय! यदि यह मेरा उपदेश यथार्थ रूपसे तुम्हें ठीक लगता है, यदि मैं ठीक कहती हूं ऐसा तुम्हारा दिलसे विश्वास है, तो अपने आपको उग्र बनाकर अपने विजय के लिये उठ कर खडे हो जाओ ॥ ८ ॥

अस्ति नः कोशनिचयो महान्हि विदितस्तव।
तमहं वेद नाऽन्यस्तमुपसम्पादयामि ते ॥ ९ ॥

अन्वयः— हि नः महान् कोशनिचयः तव विदितः अस्ति ? तं अहं वेद, न अन्यः, तं ते, उपसम्पादयामि ॥ ९ ॥

अर्थ— हमारे पास बडा धन संग्रह है, क्या वह तुम्हें पता है? उसे मैं ही जानती हूं। कोई दूसरा नहीं जानता है। वह मैं तुमको समर्पण करती हूं ॥ ९ ॥

सन्ति नैकतमा भूयः सुहृदस्तव सञ्जय।
सुखदुःखसहा वीर संग्रामादनिवर्तिनः ॥ १० ॥

अन्वयः- हे वीर सञ्जय ! भूयः सुखदुःखसहाः संग्रामात् अनिवर्तिनः तव नैकतमाः सुहृदः सन्ति ॥ १० ॥

अर्थ— हे वीर संजय! बहुतसे सुख दुःखों को सहन करने वाले, युद्धसे पीछे न हटने वाले, तेरे अनेकानेक मित्र हैं ॥ १० ॥

तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः।
इष्टं जिहीर्षतः किञ्चित्सचिवाः शत्रुकर्शन ॥ ११ ॥

अन्वयः— हे शत्रुकर्शन ! बुभूषतः, किंचित् इष्टं जिहीर्षतः पुरुषस्य तादृशाः सचिवाः हि सहायाः वै ॥ ११ ॥

अर्थ —हे शत्रुका नाश करनेवाले वीर! बढने वाले और इष्ट प्राप्तिके लिये प्रयत्न-करनेवाले पुरुष को वैसे मंत्री निश्चयसे सहायक होते हैं ॥ ११ ॥

तस्यास्त्वीदृशकं वाक्यं श्रुत्वाऽपि स्वल्पचेतसः ।
तमस्त्वपागमत्तस्य सुचित्रार्थपदाक्षरम् ॥ १२ ॥

अन्वयः— तस्याः सुचित्रार्थपदाक्षरं तु ईदृशकं वाक्यं श्रुत्वा स्वल्पचेतसः अपि तस्य तमः अपागमत् ॥ १२ ॥

अर्थ— इस माताका उत्तम आशयसे भरा हुआ यह उपदेश सुनकर स्वल्प बुद्धिवाले उस संजय का भी अज्ञान दूर हुआ ॥ १२ ॥

पुत्र उवाच।

उदके भूरियं धार्या मर्तव्यं प्रवणे मया ।
यस्य मे भवती नेत्री भविष्यद्भूतिदर्शिनी ॥ १३ ॥

अन्वयः— भविष्यद्भूतिदर्शिनी भवती यस्य मे नेत्री (तेन) मया उदके इयं भूः धार्या, प्रवणे मर्तव्यम् ॥ १३ ॥

अर्थ —पुत्र बोला— भविष्य कालमें उन्नतिका साधन दर्शाने वाली तेरे जैसी माता जिसको प्रेरणा करने वाली है वह मैं जलमें डूबती हुई मेरी मातृभूमिका भी उद्धार कर सकूंगा अथवा युद्धमें मर जाऊंगा ॥ १३ ॥

भावार्थ— जिस कर्म के करनेसे भविष्यकालमें निःसंदेह उन्नति होगी, ऐसा उपाय विचार की दृष्टिसे स्वयं निश्चित करके, उसका उपदेश करने वाली उत्तम माता जिस पुत्रकी मार्गदर्शक हो, वह पुत्र अपने परतंत्र राष्ट्रको स्वतंत्र बना सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम् ।
किञ्चिन्किञ्चित्प्रतिवदंस्तूष्णीमासं मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

अन्वयः— अहं हि त्वत्तः अपरापरं वचनं शुश्रुषुः; किंचित् किंचित् प्रतिवदन्, मुहुः मुहुः तूष्णीं आसम् ॥ १४ ॥

अर्थ —मैं तो तुम्हारे पूर्वापर संबंधसे युक्त उत्तम उपदेशको सुननेकी ही इच्छा करता था; इसीलिये थोडा थोडा बीच बीचमें प्रतिकूल बोलता था, परंतु प्रायः चुपचापही रहा था ॥ १४ ॥

अतृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्राल्लब्धस्य बान्धवात्।
उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमार्थं जयाय च ॥ १५ ॥

अन्वयः— बान्धवात् कृच्छ्रात् लब्धस्य अमृतस्य इव अतृप्यन् एषः शत्रूणां नियमार्थं जयाय च उद्यच्छामि ॥ १५ ॥

अर्थ— अपने बंधुसे कष्ट करके प्राप्त हुए अमृतसे जैसी तृप्ति नहीं होती है, उसी प्रकार तुम्हारे उपदेशसे मेरी तृप्ति नहीं हुई। तथापि अब यह शत्रुओंके पराजय और अपने विजय के लिये मैं उद्योग करता हूं ॥ १५ ॥

कुन्त्युवाच।

सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः।
तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ १६ ॥

अन्वयः— कुन्ती उवाच- सदश्वः इव वाक्यसायकैः तथा क्षिप्तः,प्रणुन्नः सः तत् सर्वं अनुशासनं यथावत् चकार ॥ १६ ॥

अर्थ— कुन्ती बोली— उत्तम घोडेके समानही माताके वाक्य रूपी बाणोंसे ताडित और उत्तेजित बने हुए उस संजयने वह सब कार्य माताकी आज्ञाके अनुसार जैसा करना चाहिये वैसाही किया।

इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्धनमुत्तमम्।
राजानं श्रावयेन्मन्त्री सीदन्तं शत्रुपीडितम् ॥ १७ ॥

अन्वयः— इदं उद्धर्षणं भीमं उत्तमं तेजोवर्धनं मंत्री शत्रुपीडितं सीदन्तं राजानं श्रावयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ— यह आख्यान उत्साह बढानेवाला, उग्रता लानेवाला, उत्तम तेजस्विता की वृद्धि करनेवाला है। राजा का मंत्री शत्रुओं द्वारा पीडित हुए निरुत्साहित राजाको यह सुनावे ॥ १७ ॥

भावार्थ— यह आख्यान ऐसा वीर भाव को बढाने वाला, क्षात्र शक्ति की वृद्धि करनेवाला तथा तेजस्विताका संवर्धन करनेवाला है कि कोई भी मनुष्य कष्टमय आपत्कालमें निरुत्साहित और हताश हो जानेके समय यह सुनेगा, तो उसमें बडा उत्साह आसकता है और इसके पढनेसे पुनः पूर्ववत् उत्साही बनकर यशस्वी हो सकता है ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ।
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति　॥ १८ ॥

अन्वयः- अयं जयो नामा इतिहासः । विजिगीषुणा श्रोतव्यः । श्रुत्वा क्षिप्रं महीं विजयते शत्रून् मर्दति च ॥ १८ ॥

अर्थ- यह "जय" नामक इतिहास है । विजय प्राप्त करने वालेको अवश्य सुनने योग्य है । यह सुन कर शीघ्रही भूमिको जीतता है और शत्रुओंका मर्दन कर सकता है ॥ १८ ॥

इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च ।
अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १९ ॥

अन्वयः— इदं पुंसवनं च वीराजननं एव । गर्भिणी अभीक्ष्णं श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १९ ॥

अर्थः-यह "पुरुष" उत्पन्न करनेवाला तथा "वीरपुत्री" उत्पन्न करनेवाला है । गर्भिणी यदि इसे वारंवार सुनेगी तो निश्चयसे वीर संतान उत्पन्न होगी ॥ १९ ॥

भावार्थ- वीर पुत्र अथवा वीरा पुत्री उत्पन्न हो ऐसी इच्छा जिन मातापिताओंकी होगी, वे इस आख्यान का पठन और मनन करें, तथा ये विचार मनमें स्थिर करें तो अवश्य वीर संतान उत्पन्न होगी ॥

विद्याशूरं तपःशूरं दानशूरं तपस्विनम् ।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादे च सम्मतम् ॥ २० ॥

अन्वयः— विद्याशूरं, तपःशूरं, तपस्विनं, ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं च साधुवादे सम्मतम् ॥ २० ॥

अर्थ- विद्यामें प्रवीण, उग्र तप करनेवाला, दान देनेमें उदार, तपस्वी, ब्राह्म श्रीसे तेजस्वी, तथा सज्जनों में संमानित होने योग्य (पुत्र उस गर्भिणीको होता है जो इस आख्यान का वारंवार पाठ करती है) ॥ २० ॥

अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम् ।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम्　॥ २१ ॥

अन्वयः- अर्चिष्मन्तं, बलोपेतं, महाभागं, महारथं, धृतिमन्तं, अनाधृष्यं, जेतारं, अपराजितम् ॥ २१ ॥

अर्थ- प्रकाशमान, अत्यंत बलवान, महाभाग्य शाली, महारथी, धैर्यशाली, न डरने वाला, सबको जीतने वाला और अपराजित (पुत्र वह गर्भिणी प्रसवती है कि जो इस इतिहास का पाठ नित्य करती है) ॥ २१ ॥

नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् ।
ईदृशं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥ २२ ॥ [१४८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासन-समाप्तौ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

जयाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अन्वयः- असाधूनां नियन्तारं, धर्मचारिणां गोप्तारं, सत्यपराक्रमं, वीरं ईदृशं पुत्रं क्षत्रिया सूते ॥ २२ ॥

अर्थ- दुर्जनों का नियमन करनेवाला, धार्मिकोंका संरक्षण करनेवाला, सत्य पराक्रमी, ऐसे वीर पुत्रको क्षत्रिय स्त्री उत्पन्न करती है (कि जो इस कथा का वारंवार पठण श्रवण और मनन करती है) ॥ २२ ॥

जय इतिहासमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

जय इतिहास का महत्त्व ।

पूर्वानुसन्धान ।

यह 'जय' नामक इतिहास कुन्ती देवीने धर्मराजको साम्राज्य प्राप्त करनेका उपदेश करनेके लिये कहा था । युधिष्ठिर आदि पांडव वीर शत्रुओंके शुष्क वचनोंपर विश्वास न करें, प्रत्युत अपने बाहुबलसे शत्रुओंका पराजय करके अपना छीना हुआ साम्राज्य पुनः प्राप्त करें, यह कुन्ती देवीके इस उपदेशका तात्पर्य था । अर्थात् इसी हेतुसे यह जय इतिहास कहा गया था । भगवान् श्रीकृष्ण पांडवोंकी ओर से साम्राज्यमदसे घमंडी बने हुए कौरवोंसे अन्तिम बातचीत करनेके लिये हास्तिनापुर राजधानीमें आये थे। कौरवोंने पांडवोंसे वस्तुतः कपटनीतिसे ही राज्य छीन लिया था, और राज्य छीन लेनेके समय पांडवोंसे कहा ही था कि, आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण होते ही आपका राज्य आपको वापस दिया जायगा । भोले पांडव समझ रहे थे कि, सम्राट् दुर्योधन अपने वचनानुसार प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके पश्चात् अपना राज्य वापस देंगे । इस विश्वाससे वे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेमें तत्पर रहे थे । राज्य छीना जानेके पश्चात पाण्डव प्रथम "द्वैतवन" (आपसके कलह रूपी जंगल) में कुछ समय व्यतीत करते रहे । इस द्वैतभावसे कुछ लाभ नहीं होगा, इस आपसी द्वेष के कारण तो शत्रुकाही बल बढ जायगा, यह अनुभवसे जानकर वे द्वैतवनसे उठे और "अद्वैतवन" (आपसकी एकता के रमणीय वन) में विराजे । वहां उन्होंने आपस की संघटना की, आपस के विरोध किसी न किसी प्रकारसे हटादिये और अपनी शक्ति बढाने लगे । अर्जुन ने अपूर्व शस्त्रास्त्र प्राप्त करने का उद्योग किया, भीमने बल बढाया, नकुलसहदेव ने

अपना शासनकौशल्य बढाया और धर्मराजने यज्ञयागों में ब्राह्मणोंका अत्यधिक सत्कार करके अपने मित्रोंकी संख्या बढाई। यदि पाण्डव "अद्वैतवन" में न आकर "द्वैत-वन" में अपना सब समय व्यतीत करते, तो उनको यह लाभ प्राप्त न होता। इस प्रकार अपनी संघटना करके बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवासकी कठोर प्रतिज्ञा पूर्ण करके पांडव प्रकट हुए।

जिनका साम्राज्य छीना जाता है, उनमें प्रायः प्रथम आपस के कलह बढते हैं। बहुत समय के पश्चात् उनको पता लगता है कि, आपस का कलह अपना ही नाश करता है, तब वे लोग आपसकी संघटना करने लग जाते हैं और आपसके विद्वेष हटा देते हैं। इसके पश्चात् जिस प्रमाणमें उनमें अपना बल बढ जाता है, उसी प्रमाणसे उनके पास स्वराज्य आने लगता है। पाण्डवोंके इतिहास में भी यही बात हम देखते हैं।

जब प्रतिज्ञा पूर्ण हुई तब कईयों को विश्वास था कि, दुर्योधन और उनके मंत्रीगण पांडवोंको राज्यभाग वापस करेंगे। कईयोंका मत था कि, युद्धके विना साम्राज्य कभी वापस नहीं मिल सकता। इसका निश्चय करनेके लिये ही श्रीकृष्णभगवान दुर्योधनकी राजसभामें आये थे और वहां उन्होंने कहा कि "पाण्डवोंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की है, आप अब अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये पाण्डवोंका राज्य उनको वापस दीजिये।"

सम्राट् दुर्योधन से राजसभामें उत्तर मिला कि "युद्धके विना रत्तिभर भी भूमि नहीं मिलेगी" यहां सब जनता को पता लगा कि सम्राटोंके वचन कुछ और ही माने रखते हैं। जैसा हाथीके दांत दिखानेके अलग और खानेके अलग होते हैं, ठीक उस प्रकार सम्राटोंके तथा उनके मंत्रियोंके वचनोंका दिखावटी अर्थ कुछ और होता है और उसका असली आशय कुछ अन्य ही होता है। "प्रतिज्ञा पूर्ण होने के पश्चात् राज्य वापस किया जायगा।" यह सम्राट का वचन था, इसका अर्थ ऐसा था कि- "प्रतिज्ञा पूर्ण की जावे या न की जावे, साम्राज्य वापस मिलेगा नहीं, युद्ध के विना कभी स्वराज्य नहीं मिलता। जो समझते हैं कि सम्राटोंके वचन अटल वचन हैं, वे भ्रममें हैं। सम्राट् अपना साम्राज्य बढानेके लिये समयानुसार मीठे वचन बोलते ही हैं, परंतु वे पालन करनेके लिये बाधित नहीं हैं।"

इस कौरव सम्राट्के वचनभंग से उस समयकी भोली जनताको राजनीतिका एक

महत्त्वपूर्ण पाठ मिल गया। यह पाठ लेकर श्रीकृष्णभगवान् वापस युधिष्ठिरके पास जा रहे थे। वापस होनेके पूर्व माता कुन्ती देवीजीसे मिले और पूछा कि "तुम्हारा संदेश युधिष्ठिर के लिये क्या है?" इस समय यह जय इतिहास कुन्ती देवीने कहा और श्रीकृष्णसे कहा कि "यही मेरा सन्देश है, यह धर्मराजसे कहो, धर्मराज इस के अनुसार आचरण करे और युद्ध करके अपना स्वराज्य अपने बल से कमावे।"

जय इतिहासका सारांश।

सौवीर देशका एक राजा था, उसकी महाराणी विदुला थी, उसका एक पुत्र था जो पिताके पश्चात् राजगद्दीपर आया था। सिंधुदेशमें दूसरा एक राजा था, उसने अपने प्रबल सैन्यके साथ सौवीर देशपर चढाई करके, सौराष्ट्र राजाका पराभव किया और उसका राज्य अपने साम्राज्यमें मिला दिया। इस कारण सौवीरके राजवंशके लोग, रानियां, तथा राजनिष्ठ मंत्रीगण सब वहांसे भागे और जहां स्थान मिला, वहां छिप गये। राष्ट्र पराधीन होगया, सज्जन लोग दुःखी हुए, और सर्वत्र उदासीनता छाई गई। स्वराज्य प्राप्त करनेका कोई उपाय विचारमें भी नहीं आता था। सिंधु राजाका सैन्य-बल बडा, उसके वीर बडे शूर, उसका इंतजाम कडा था, इसकारण उसका साम्राज्य उलटा देना अशक्य बात है, ऐसा सब मानने लगे। सिंधुपतिराजाने सौवीर का संपूर्ण राज्य अपने आधीन कर लिया था, इसलिये ओहदेदारीके मिषसे, व्यापारके निमित्तसे, कला कुशलताके हेतुसे, तथा अन्यान्य कार्योंके मिषसे सिंधु देशके लोग सौवीरमें आकर कार्य करने लगे थे, और उस कारण सौराष्ट्र प्रतिदिन निर्धन होता जाता था और सिंधुदेश धनवान होता था। पहिले पहिले सौवीर देशके वीरोंने कुछ स्वराज्य स्थापनेके लिये प्रयत्न किये, परंतु वे सब विफल होगये। पश्चात् सभी सौवीरके जन मानने लगे 'चलो, स्वराज्य होना अब मुष्कील है, इसलिये सिंधुदेशके साम्राज्यके नीचे रहकर सुराज्यका लाभही हम लेंगे।' ऐसा विचार करके स्वराज्यप्राप्तिका यत्न करनाभी उन्होंने छोड दिया था। जो पूर्ण स्वातंत्र्यप्राप्तिके इच्छुक थे, वे विदेशमें जा फंसे थे, क्योंकि स्वदेशमें रहना उनके लिये असंभव हुआ था। सिंधुराजाके कडे कानूनोंके कारण और कठोर प्रबंधके कारण वे अपने देशमेंभी सुखसे रह नहीं सकते थे। जो दुर्बल थे वे तो सिंधुराजासे खुशामद करके रहते थे, अथवा जो भी कुछ नौकरी मिल जाती थी, उसीपर संतुष्ट रहते थे। सिंधुराजाने सौवीरके कई लोगोंको धन देकर वश किया था, कईयोंको अपने भृत्यकार्य देकर खुश किया था, कईयोंको भूमी देकर

संतुष्ट किया था, कईयोंको सिंधुदेशकी कुमारियोंके जालेमें फंसा दिया था और शेष रहे मनुष्योंको कडे प्रबंधसे दूर रखा था। सिंधुदेशकी सुंदर कन्याओंके साथ विहार करना भाग्यका चिन्ह है, ऐसा सौवीर देशके लोग मानने लगे थे, यहांतक सौवीर देशकी गिरावट होचुकी थी। विदेशी राज्य होनेसे ऐसा हुआही करता है। सिंधुवीरोंके पीछे हाथ जोडकर चलना और जो कुछ उनसे प्राप्त हो उसमें संतुष्ट होना, सौवीर देशके लोगोंका कार्य हुआ था। परराज्य होनेसे जो जो हानियां होना संभव थी, वह सब हानियां सौवीर देशके लोग अनुभव कर रहे थे। इतना होनेपर भी वे आपसका संगठन करनेमें दत्तचित्त न थे और स्वराज्य प्राप्तिका प्रयत्नभी जितने स्वार्थत्यागसे करना आवश्यक था, उतने त्यागसे वे करते नहीं थे। महाराज्ञी विदुलादेवीका पुत्र जो वास्तवमें सौवीर देशका राजा था, हताश और निरुत्साह होकर उदासीनतामें अपना समय बिता रहा था। ऐसी अवस्थामें विदुला देवीने अपने पुत्रको पास बुलाकर जो उपदेश किया था, वही यह "जय इतिहास" है। इस दृष्टिसे देखनेसे इस उपदेशका महत्त्व ध्यानमें आसकता है। यह जय इतिहास जब विदुलाकी ओजस्वी वाणीसे उसके पुत्रने सुना, तब वह स्वराज्यप्राप्ति के लिये प्रयत्न करनेके उद्देश्यसे कटिबद्ध हुआ और सिंधुपतिका पराभव करके, स्वराज्य प्राप्त करके आनंदका भागी बना। स्वराज्य प्राप्त होनेसे सौवीर देशके लोग पूर्ववत् सुखी होगये। यह जय इतिहास श्रवणका फल है। ग्रंथ लेखकके शब्दोंमें ही इस फल का वर्णन देखिये-

जय इतिहास सुनने सुनानेका फल।

इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्धनमुत्तमम्।
राजानं श्रावयेन्मन्त्री सीदन्तं शत्रुपीडितम् ॥ १७ ॥
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥ १८ ॥
इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च।
अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १९ ॥
विद्याशूरं तपःशूरं दानशूरं तपस्विनम्।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादे च संमतम् ॥ २० ॥
अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम्।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ २१ ॥

नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम्।
ईदृशं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥ २२ ॥
जय इति० अ० ४

" यह जय इतिहास उत्साह बढानेवाला, वीरता उत्पन्न करनेवाला और तेजस्विता वृद्धिंगत करनेवाला है, इस लिये शत्रुसे पीडित हुए राजाको उसका मंत्री यह जय इतिहास सुनावे। जिस समय राजा यह आख्यान सुनेगा, उसी समय वह विजय प्राप्ती के लिये यत्न करनेके लिये कटिबद्ध हो जायगा। इतना उत्साह उस राजामें भर देनेका सामर्थ्य इस इतिहासमें है। जो जय प्राप्त करनेका इच्छुक है उसको यह इतिहास अवश्य सुनना चाहिये। जो सुनता है, वह शत्रुको परास्त करनेका उत्साह प्राप्त कर सकता है और स्वप्रयत्नसे यशस्वी भी हो सकता है। इस जय इतिहास के सुननेसे वीर पुत्र तथा वीर पुत्री उत्पन्न हो सकती है, इस लिये गर्भिणी स्त्रीको यह इतिहास अवश्य सुनना चाहिये। जो गर्भिणी स्त्री इस को पढेगी या सुनेगी उसको वीर संतान उत्पन्न होगी। विद्वान, तपस्वी, दानी, ब्राह्मतेजसे युक्त, सज्जनों द्वारा संमानित, तेजस्वी, बलिष्ठ, महाभाग्यशाली, महारथी, महावीर, धैर्यशाली, न डरनेवाला, विजयी और पराजित न होनेवाला, दुष्टोंका दमन करनेवाला, धार्मिक पुरुषोंकी रक्षा करने वाला पुत्र गर्भिणी स्त्रीके उदरसे उत्पन्न होता है, जो गर्भवती रहनेकी अवस्थामें इस आख्यान का श्रवण करती है। "

यह इस इतिहास के श्रवण का महात्म्य है। यह इतिहास पराधीन लोगोंको स्वतंत्रता देनेवाला, भीरुओंको निडर बनानेवाला, पराजित हुए लोगोंको पुनः विजय देनेवाला है, इस कारण जो लोग पारतंत्र्यके कीचडमें फंसे हैं, वे इसका योग्य मनन करें और उचित बोध प्राप्त करके स्वाधीनताके भागी बनें।

पुरातन इतिहास।

यह जय इतिहास अतिपुरातन है। पांडवोंके समय भी यह इतिहास पुरातन कहा जाता था, हम पांडवोंके इतिहास को पुराणा इतिहास कहते हैं, और पाण्डव इस जय इतिहास को पुराणा इतिहास कहते थे !! इससे इस कथा की प्राचीनता का पता लग सकता है। इस विषयमें यह श्लोक देखिये-

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परन्तप ॥
जय० अ० १।१

" विदुलाका पुत्रके साथ हुआ यह संवाद है और यह " जय " नामक इतिहास अतिप्राचीन है ।" इसमें प्राचीनतम आदर्श आर्य राणीका इतिहास है, जिसने अपने पुत्रको उपदेश करके पुरुषार्थको प्रवृत्त किया और गया हुआ राजवैभव पुनः प्राप्त कराया । प्राचीन आर्य स्त्रियोंकी योग्यताका भी पता इस जय इतिहाससे लग सकता है । विदुला देवी पट्टराणी थी, उसके तारुण्यमें राज्यवैभव था, पतिकी मृत्यु होनेके पश्चात् राजगद्दीपर उसका पुत्र आया, परंतु शत्रुने उसको हरा दिया और उस का राज्य छीन लिया । अर्थात् विदुला देवी और उसका पुत्र दोनों राज्यवैभवसे भ्रष्ट हुए। ऐसी विपन्न दशामें प्राचीन समय की आर्य स्त्रियां कैसा वीरतापूर्ण उपदेश देती थीं और राष्ट्रका कार्य करती थी, यह बात इस जय इतिहाससे ज्ञात होती है ।

विदुलारानीकी योग्यता ।

निम्नलिखित श्लोकोंमें विदुलाकी योग्यताका वर्णन किया है—

यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥ २ ॥
क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी ।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३ ॥
विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥ ४ ॥

जय० अ० १

इन श्लोकोंमें विदुलाकी विद्वत्ता और प्रभावशालिता का वर्णन है । आजकलकी स्त्रियोंको और पुरुषोंको भी इस वर्णन का अवश्य विचार करना चाहिये । (१) यशस्विनी— यशवाली विदुला थी, जिसने अपनी बुद्धिमत्तासे यश प्राप्त किया था । (२) मन्युमती-क्रोध करनेवाली, अर्थात् अपमान कदापि सहन न करनेवाली, और अपमान का बदला लेनेतक प्रयत्न करने वाली ! मन्युका दूसरा अर्थ ' उत्साह ' है । इस अर्थको लेनेसे उत्साहवाली ऐसा अर्थ होगा । विदुला विलक्षण उत्साहवाली थी, यह बात इस जय इतिहास के पढनेसे स्पष्ट होती है । इसके उत्साहके कारणही इसका पुत्र पुनः अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर सका । (३) कुले जाता—उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई । अर्थात् जिस कुलमें उत्तम क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं और जिस कुलमें संकर नहीं हुआ है ऐसे कुलमें यह विदुला उत्पन्न हुई थी । इस लिये इसमें उत्तम क्षात्रगुण जन्मसे ही प्राप्त हुए थे । यह कुलीनता सद्गुणवृद्धी के लिये अत्यंत

आवश्यक है। जिस कुलमें व्यभिचार आदि दोषोंसे मलीनता उत्पन्न होती है, उस में शुद्ध गुणोंकी वृद्धि नहीं होती, मलिन वृत्तिसे हीनदुर्गुण बीचमें घुसते हैं। (४) विभावरी-विदुला तेजस्विनी थी। (५) क्षत्रधर्मरता-क्षत्रियोंके धर्ममें प्रवीण थी, क्षत्रियके कर्तव्य क्या हैं और क्षत्रियोंको किस समय क्या करना चाहिये, यह उसको पूर्णतया ज्ञात था। (६) दान्त-इन्द्रियोंका शमन करनेवाली विदुला थी। अपने इंद्रिय स्वैर गतिसे संचारित करनेवाली नहीं थी। स्त्री स्वैरिणी कभी नहीं होनी चाहिये, स्त्रियोंके स्वैराचारसे ही कुल भ्रष्ट हो जाता है। और कुलीन-ता नष्ट हो जाती है। (७) दीर्घदर्शिनी—विदुला दूरदर्शिनी थी। दूरदर्शी उस को कहते हैं कि, जिसको दूरका परिणाम प्रत्यक्ष दिखाई देता है, यह गुण विद्या और विचारसे प्राप्त होता है। राजशासनमें और विशेषतः स्वतंत्रताप्राप्तीके व्यवसायोंमें इस गुणकी अत्यंत आवश्यकता है। (८) राजसंसत्सु विश्रुता-राजसभाओंमें जिसकी प्रशंसा होती है, ऐसी विदुला थी। अर्थात् इस विदुलाकी मंत्रणा राजसभाओंमें विशेष महत्त्वकी समझी जाती थी। इससे उस समय की स्त्रियां भी कितनी राजकार्यधुरंधर होती थी, इसका पता लग सकता है। इतनी योग्यता विना विद्याप्राप्तीके नहीं हो सकती, इसलिये अनुमान होता है कि, विदुला बडी विदुषीभी थी। (९) श्रुतवाक्या-बहुत उपदेश जिसने सुने हैं और (१०) बहुतश्रुता— बहुत विद्या जिसने प्राप्त की है, ये दो शब्द उस विदुलाकी विद्वत्ता बता रहे हैं। (११) राजन्या— यह क्षत्रिया थी। गुण, कर्म और जन्मसे क्षात्रतेज इसके अंदर था।

द्वितीय अध्यायमें स्वयं विदुला अपनी योग्यता कहती है, वे श्लोक भी यहां देखने योग्य हैं—

> अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत्परिशाश्वतम्।
> पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि।
> शाश्वतं चाव्ययं चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ ३७ ॥
>
> जय० अ० २

"प्रजापतिद्वारा निर्मित सनातन और शाश्वत नियमोंको बतानेवाला सब प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानोंको संमत क्षत्रहृदय नामक सनातन शास्त्रको मैं जानती हूं।"

क्षत्रियकी शासननीतिका यह शास्त्र था, जो क्षत्रहृदय नामसे प्रसिद्ध था, प्रजापतिका रचा हुआ यह शास्त्र बहुतही प्राचीन समयसे सर्वमान्य था। इसका अध्ययन विदुला-देवीने किया हुआ था। क्षत्रिय कन्याओंका अध्ययन कितना होता था, इसकी कल्पना

इससे ज्ञात हो सकती है । यह ग्रंथ इस समय उपलब्ध नहीं है, लुप्त हुआ है । जिस प्रकार चाणक्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र आज है, उसीप्रकार का यह ग्रंथ प्राचीन समयमें था और क्षत्रियोंके स्त्रीपुरुषोंको इसका अध्ययन आवश्यक था, क्यों कि इससे क्षत्रियका हृदय क्षात्रकर्म के लिये जैसा चाहिये, वैसा बनता था । विदुलाके अध्ययन का पता इस वर्णनसे ज्ञात हो सकता है । अब उस विदुला की मनःस्थितिका वर्णन देखिये—

अहं महाकुले जाता ह्रदाद् ध्रदमिवागता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४ ॥
महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम् ।
पुरा हृष्टः सुहृद्वर्गो मामपश्यत्सुहृद्गताम् ॥ १५ ॥
नेति चेद्ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्येत हृदयं मम ।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥ १९ ॥
वयमाश्रयणीयाः स्म न श्रोतारः परस्य च ।
साऽन्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २० ॥
जय० अ० २

"मैं विदुला बडे कुलमें उत्पन्न हुई हूं और बडे कुलमें ब्याही हूं । मैं स्वामिनी हूं और सबका कल्याण पूर्णकल्याण, करनेवाली हूं । पति के द्वारा भी मेरा सत्कार होता था । उत्तम पुष्प उत्तम आभूषण और उत्तम वस्त्र धारण करके उत्तम श्रेष्ठ मित्रजनोंमें मैं रहती थी । ब्राह्मण आगये तो उनको मैं दान देकर संतुष्ट करती थी, ब्राह्मणोंको दान न देनेका शब्द उच्चार करनेसे मेरा हृदय फट जाता था, मैंने या मेरे पतिने ब्राह्मणोंको नकार कभी नहीं कहा । हम दूसरोंको आश्रय देनेवाले ही रहे थे, परंतु कभी दूसरे की आज्ञा सुननेवाले नहीं थे । आज वह मैं दूसरेके आश्रयसे जीवित रहती हूं इस कारण अब जीवित रहना मेरेलिये अशक्य हुआ है ।" ये विदुलाके शब्द उसकी योग्यता बता रहे हैं । यह सच्ची क्षत्रिया और बडी राजकार्यकुशल महाराज्ञी या सम्राज्ञी थी । विदुषी थी और योग्य मंत्रणा देनेवाली थी । अतिप्राचीन कालमें यह योग्यता स्त्रियोंकी थी और राजाकी रानियां ऐसी हुआ करती थीं । इसी कारण आर्योंका राज्य यशसे संपन्न था । जबसे स्त्रियोंका विद्याध्ययन बंद हुआ, तबसे आर्योंका अधःपात हुआ है ।

क्षात्रधर्म ।

सम्राज्ञी विदुला देवीने जो क्षात्रधर्मका उपदेश इस जय इतिहासद्वारा दिया है, उसका सारांशसे अब निरीक्षण करते हैं ।

युद्धकर्म।

युद्ध के लिये ही क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है, इस विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च।
जयन्वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम्॥ १३॥
न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद्विद्यते सुखम्।
यदमित्रान्वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमेधते ॥ १४॥
मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना।
निकृतेनेह बहुशः शत्रून्प्रतिजिगीषया ॥ १५॥
आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य च।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत्॥ १६॥

जय० अ० ३

"युद्ध के लिये ही क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है, विशेषतः युद्धमें जय प्राप्त करनेके लिये। युद्धमें जय मिलनेसे अथवा युद्धमें मृत्यु प्राप्त होनेसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। स्वर्गस्थ इन्द्रके घरमें वह सुख नहीं है, जो सुख शत्रुको वशमें करनेसे क्षत्रियको प्राप्त होता है। क्रोधसे जलनेवाले बुद्धिमान पुरुषको शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेसे जो सुख प्राप्त होता है, वह स्वर्गसुखसे श्रेष्ठ होता है। शत्रुको जीतने अथवा अपने आपको मृत्युके वशमें करनेसे ही क्षत्रियको शान्ति मिल सकती है। क्षत्रियको शान्ति मिलनेकी कोई दूसरी रीति नहीं है।"

ये श्लोक स्पष्ट बता रहे हैं कि, क्षत्रियका स्वभाव कैसा होना चाहिये। क्षत्रिय कभी दूसरेके सन्मुख नम्र न होवे, सदा अपने उग्र स्वरूप में रहे, इस विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखिये—

क्षत्रिय नम्र न बने।

यो वै कश्चिदिहाऽऽजातः क्षत्रियः क्षत्रकर्मकृत्।
भयाद्वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित्॥ ३८॥
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥ ३९॥
मातङ्गो मत्त इव च परीयात्स महामनाः।

ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च सञ्जय ॥ ४० ॥
नियच्छन्नितरान्वर्णान्विनिघ्नन्सर्वदुष्कृतः ।
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥ ४१ ॥

जय० अ० २

"जो कोई क्षत्रिय क्षत्रियोंके कर्मको जाननेवाला हो, वह भय धारण न करे और कभी किसी दूसरेके सामने नम्र न होवे। सदा उग्रतापूर्वक उद्यम करे, कभी नम्र न होवे, इसीका नाम पौरुष है। चाहे बीचमें टूट जावे, परंतु कदापि नम्र न होवे। जैसा मदोन्मत्त हाथी अपने बलसे चारों ओर जाता है, वैसा क्षत्रिय जाये। केवल धर्मके कारण ब्राह्मणोंके सामने सिर झुकावे, और किसीके सन्मुख सिर न झुकावे। सब अन्य वर्णोंका उत्तम नियमन करे और दुराचारियोंको दण्ड देवे, चाहे सहाय्यक हों, चाहे न हों, क्षत्रिय अपना जीवित समाप्त होनेतक इसी प्रकारका वर्ताव करे।"

क्षत्रियके भयभीत होनेसे अनर्थ।

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्यांचिदापदि ।
अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥ १ ॥
दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवानुदीर्यते ।
राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक्कुर्वन्ति ते मतीः ॥ २ ॥
शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः ।
अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद्विमानिताः ॥ ३ ॥
य एवात्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते ।
अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इला इव ॥ ४ ॥
शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बान्धवान् ।
अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ॥ ५ ॥
ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः ।
मा दीदरस्त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः ॥ ६ ॥

जय० अ० ४

" कितनी भी कठिन कष्टकी अवस्था आनेपर राजाको भयभीत होना उचित नहीं है। और यदि किसी कारण राजा भयभीत हुआ तो भी भयभीत होनेके समान आचरण नहीं करना चाहिये। क्योंकि राजाको भयभीत हुआ देखकर सबही डर जाते

हैं, राष्ट्र, सैन्य, मंत्रीगण सब डरते हैं और उनमें भिन्न भिन्न विचार शुरू होते हैं। कई तो शत्रुको मिल जाते हैं, कई इस डरपोक राजाको छोड देते हैं, तीसरे बदला लेनेका यत्न करते हैं, जो पहिले कभी अपमानित हुए हों। जो अत्यंत सच्चे मित्र होते हैं वेही इसके पास रहते हैं। राजाको कष्टकी अवस्था प्राप्त होनेपर भी जो सन्मित्र अभिमानसे उनके पास रहते हैं और उसकी उन्नतिके लिये यत्न करते हैं वे मित्रही सन्मान करने योग्य होते हैं।"

राजाको भय प्राप्त होनेसे राष्ट्रकी सब व्यवस्था बिगड जाती है। इसलिये क्षत्रियको किसी भी आपत्तिमें भय धारण करना योग्य नहीं। डरजानेपर भी बेडर रहनेके समान कार्य करे और यशका भागी बने।

जीवन त्यागनेकी तैयारी।

यदि राजकीय उन्नति चाहिये, तो उस उन्नतिके लिये अपने सर्वस्वका समर्पण करने की तैयारी चाहिये। जीवनतक समर्पण करनेकी तैयारी न हुई तो यश प्राप्त नहीं हो सकता, इस विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

यदैव शत्रुर्जानीयात्सपत्नं त्यक्तजीवितम्।
तदैवाऽस्मादुद्विजते सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥ ३६ ॥
तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि।
निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद्भविष्यति ॥ ३७ ॥
निर्वादादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति।
धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ॥ ३८ ॥
स्खलितार्थं पुनस्तानि संत्यजन्ति च बान्धवाः।
अप्यस्मिन्नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम् ॥ ३९ ॥

जय० अ० ३

"जब शत्रु निश्चयसे जानता है कि, अपना प्रतिस्पर्धी अपने जीवनपर उदार हो चुका है, तब वह उससे डरने लगता है, जिस प्रकार घरमें प्रविष्ट सर्पसे डरते हैं। यदि शत्रु बहुत प्रबल होगया हो और उसको वशमें करना असंभव प्रतीत होता हो, तो उसके साथ सामसे वर्ताव करना चाहिये। अन्तमें इस सामप्रयोगसे भी वही बात बन जायगी। शांतिके उपायोंसे कुछ स्थान प्राप्त हुआ तो अपना बल बढेगा और पश्चात् धनभी प्राप्त होगा। धन और स्थान मिलनेपर मित्र बढ जांयगे और आगे स्वराज्य-

प्राप्तिका साधन बनता जायगा। परंतु यदि स्थान और धनसे हीन अवस्था होगई, तो बंधुगण भी उसको छोड देते हैं और निंदा भी करते हैं।" इसलिये शत्रुके साथ उचित व्यवहार करके उसका बल कम करने और अपना बल बढानेका प्रयत्न होना चाहिये, तब अन्तमें स्वराज्य प्राप्त होगा। जो स्वराज्यप्राप्तीके लिये प्रयत्न नहीं करता वह कुपुत्र है, उसकी निंदा निम्नप्रकार इस जय इतिहासमें की है—

कुपुत्रनिंदा।

अनन्दन ...... द्विषतां हर्षवर्धन ॥ ५ ॥
निर्मन्युश्चाप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः।
यावज्जीवं निराशोऽसि .... ॥ ६ ॥
मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७ ॥
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।
अमित्रान्नन्दयन्सर्वान्निर्मानो बन्धुशोकदः ॥ ८ ॥
सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।
सुसंतोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥ ९ ॥
त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद्वज्रहतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वाप्सीः शत्रुनिर्जितः ॥ १२ ॥
मास्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माऽधो भूस्तिष्ठ गर्जितः॥१३॥
मा तुषाग्निरिवाऽनर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥ १४ ॥
मा ह स्म कस्यचिद्गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः ॥ १५ ॥
जय० अ० १

"हे पुत्र! तू कुपुत्र है, क्योंकि तू शत्रुको आनंद देता है और स्वकीय लोगोंका दुःख बढाता है। तुझे क्रोध नहीं आता, तेरे अंदर उत्साह नहीं है, तेरे पास उन्नतिके साधन कुछ भी नहीं हैं, बडे लोगोंमें तेरी गिनती नहीं होती और तू सदा निराश रहता है, इस लिये तू कुपुत्र है। अरे कुपुरुष! तू अपने आपका अपमान न कर, अल्पलाभसे संतुष्ट न हो, मनमें कल्याणके विचार धारण कर और डर छोड कर शत्रुका संहार कर। यह कार्य जबतक तू नहीं करता तब तक तू कुपुत्र ही कहलायेगा। अरे

कुपुरुष ! तू उठ ! ऐसा पराजित होकर मत सोता रह ! तू अपने आचरणसे शत्रुओंका आनन्द बढा रहा है और स्वयं अपमानित होकर अपने ही बांधवोंका शोक बढा रहा है। थोडेसे जलसे छोटा नाला भर जाता है, चूहेकी अञ्जली थोडेसे पदार्थसे भर जाती है, इसी प्रकार जो कुपुरुष होता है, वह अल्प लाभसे ही संतुष्ट हो जाता है। वज्रघातसे मरे हुए मुर्देके समान तूं क्यों सोया रहता है, हे कुपुरुष ! उठ, शत्रुसे पराजित होकर इस प्रकार मत सोता रह। उठकर स्वराज्यप्राप्तिके लिये प्रयत्नशील हो। अपने पुरुषार्थसे अपना यश फैला, दीन होकर विनाशको मत प्राप्त हो। अपनी अवस्था नीची न होने दो। भूंस की अग्निके समान ज्वालारहित होता हुआ केवल धूंवाही उत्पन्न न कर, इस प्रकार केवल जीवित रहना ही क्या लाभ करेगा ? राजाके घरमें तेरे जैसा नरम स्वभाववाला पुत्र उत्पन्न होना योग्य नहीं है।" कुपुत्रके और लक्षण देखिये-

इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥१९॥
यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम्।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥ २२॥
दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥ २३॥
न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि।
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ॥ २५॥
यमेनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम्।
लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम् ॥ २६॥
अहो लाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम्।
नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते ॥ २७॥
अवल्गुकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम्।
कलिं पुत्रप्रवादेन सञ्जय त्वामजीजनम् ॥ २९॥

जय० अ० १

"अरे निर्बल कुपुत्र ! तेरी सब कीर्ति नष्ट हुई और सब पुण्य मारा गया। भोग प्राप्त करनेका मूलही नष्ट हुआ इसलिये अब तू क्यों जीता है ? जिस मनुष्यके उत्तम अद्भुत आचरणकी प्रशंसा लोग नहीं करते वह न तो स्त्री है और न पुरुष है, वह केवल माताका भारही है। दान, तप, सत्य, विद्या और धनके विषयमें जिसका यश गाया

नहीं जाता वह पुत्र नहीं परंतु माताका मलही है, यश घटानेवाली और दुःख बढाने-वाली इस दुष्ट मनःप्रवृत्तिको एकदम फेंक देना तुमको उचित है। जबतक यह तुम्हारी वृत्ति रहेगी तब तक तुमको कुपुत्रही कहा जायगा। जिस दुर्बल पुरुषके हीन आचारके कारण शत्रुओंको आनंद होता है। वह कुपुत्र तो लोगोंमें अपमानका ही भागी होता है। ऐसे निरुत्साही दीन क्षुद्र अल्पशक्तिवाले पुरुषको प्राप्त कर कभी बांधवोंको सुख नहीं मिल सकता है। हीन कर्म करनेवाले, कुल और वंशका नाश करनेवाले तेरे जैसे पुत्रके नामसे प्रत्यक्ष कलिकोही मैंने जन्म दिया है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।" कुपुत्रकी निंदा और देखिये—

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम्।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥३०॥
क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥ ३२ ॥
संतोषो वै श्रियं हन्ति तथाऽनुक्रोश एव च।
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत् ॥ ३३ ॥
तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद्य इह जीवति ॥ ३५ ॥
भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम्।
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ॥ ४१ ॥

जय० अ० १

"जिसके मनमें क्रोध नहीं है और उत्साह भी नहीं है, जो निर्वीर्य है और जो शत्रु का आनंद बढानेवाला है, ऐसे कुपुत्रको कोई स्त्री कदापि उत्पन्न न करे। सदा शत्रुके अपराधोंको क्षमा करनेवाला और क्रोधहीन जो होता है, वह न तो स्त्री है और न पुरुष है। संतोषसे धनका नाश होता है तथा दयासे भी नाश होता है। चढाई न करना और मनमें भय धारण करना, ये दोनों दुर्गुण जिसके मनमें रहते हैं, उसको बडा महत्त्वका स्थान कभी प्राप्त नहीं होता। जो स्त्रीके समान यहां आचरण करता है उसका पुरुष नाम बिलकुल व्यर्थ है। अरे कुपुत्र! नौकर जिसका आश्रय छोड देते हैं, दूसरेके दिये अन्नपर जिसकी उपजीविका होती है, इस प्रकारके दीन और बलहीनोंके समान तू बर्ताव न कर।" कुपुरुषके लक्षण और देखिये—

अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि।
निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥ १ ॥
यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात्।

क्षत्रियो जीविताकाङ्क्षी स्तेन इत्येव तं विदुः॥ २॥
दासकर्मकरान्भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान्।
अवृत्त्यास्मान्प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥ १७॥
यदि कृत्यं न पश्यामि तवाद्याहं यथा पुरा।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १८॥
सर्वे ते शत्रवः शक्या न चेज्जीवितुमर्हसि।
अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥ २२॥
निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम्।
एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३॥
अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम्।
अपि त्वां नानुपश्येयं दीनादीनमिवाऽऽस्थितम्॥३१॥

जय० अ० २

"यदि तू पुरुपार्थ प्रयत्न न करेगा तो हीन और दिन बनेगा। क्षत्रिय होकर समय-पर पुरुषार्थ प्रयत्नसे अपना तेज प्रकट नहीं करता, और जीव बचानेके लिये युद्धसे भागता है वह चोर कहलाता है। हमारे नौकर चाकर, तथा आचार्य ऋत्विज और पुरोहित आदि हमारी निर्धनताके कारण हमें छोडते हैं और दूसरे स्थानपर वृत्तीके लिये यत्न करते हैं, यह देख कर हमारे जीवित रहने में लाभ कौनसा है? यदि तू पूर्ववत् पुरुषार्थ न करेगा तो मेरे हृदयको शान्ति किस प्रकार मिल सकती है? यदि तू यह नपुंसक के समान जीवन व्यतीत करेगा, तो उससे क्या लाभ होगा। यदि तू अपने जीवनको त्यागनेका निश्चय करोगे, तो तुम्हारे शत्रु दूर करना संभव है। शत्रुका वध करनेसे ही यश मिलता है। अपने लोग दुःख करें और शत्रु आनन्द करे, यह तुम्हारी दीनता का कार्य मैं देखना नहीं चाहती हूं।" तथा और देख—

युवा रूपेण संपन्नो विद्ययाऽभिजनेन च।
यस्त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः।
अधुर्यवच्च वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत् ॥ ३३॥
यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३४॥

जय० अ० २

"तरुण, सुरूप, विद्वान और अनुयायीयोंके समेत रहनेवाला तेरे जैसा पुरुष यदि

दूसरोंके पीछे पीछे चले, तो मैं समझती हूं कि वह जीवन नहीं, परंतु मरण ही है। यदि तुझे शत्रुके पीछे पीछे चलता हुआ और उसके साथ मीठा भाषण करनेवाला अर्थात् उसकी हां में हां मिलाता हुआ देखूंगी, तो मेरे अन्तःकरणको शान्ति किस प्रकार मिलेगी?"

कुलका अभिमान।

नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेद्योऽन्यस्य पृष्ठतः।
न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमर्हसि ॥ ३५॥

जय० अ० २

"अरे पुत्र! इस हमारे कुलमें ऐसा कोई नराधम नहीं हुआ था, कि जो शत्रुके पीछे पीछे चलता रहे। यदि तू शत्रुकाही सेवक बननेवाला है तो तेरे जीवित रहने का कोई प्रयोजन नहीं है।" अर्थात् अपने कुल का अभिमान धारण करके कुलकी तेजस्विता के अनुरूप परम पुरुषार्थ करके यशका भागी बन। इस प्रकार शत्रुका अनुचर बनकर जीवित रहनेमें भला कौनसा लाभ है?

अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च।
सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः॥ १२॥

जय० अ० ३

"जो पुरुषार्थ प्रयत्न करते नहीं और निन्दित कर्म करते हैं, वे अधम मनुष्य इस लोकमें और परलोकमें कदापि सुख प्राप्त नहीं कर सकते।" यदि सुख चाहिये तो उत्तम पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिये।

इस प्रकार कुपुत्रकी अत्यन्त निन्दा इस जय इतिहासमें की है। जिसके पढनेसे सुपुत्र बननेका ज्ञान तत्कालहीमें प्राप्त हो सकता है। हरएक मनुष्यको यह कुपुत्रकी निंदा पढकर अपना आचरण देखना चाहिये और परीक्षा करनी चाहिये, कि अपना आचरण कैसा हो रहा है। यदि किसी प्रकार अपने आचरणमें त्रुटी होती हो, तो उसको उसी समय ठीक करना चाहिये और सुपुत्र बननेकी पराकाष्ठा करनी चाहिये। इस प्रकार अपने पुत्रको चेतावनी देकर शत्रुका भय न करनेके विषयमें इस प्रकार कहा है—

शत्रुकी अवस्था।

सन्ति वै सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा न तथा जनाः।
दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः॥ ४॥

सहायोपचितिं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः।
अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५ ॥
तैः कृत्वा सह संघातं गिरिदुर्गालयं चर।
काले व्यसनमाकाङ्क्षन्नैवायमजरामरः ॥ ६ ॥ जय० अ० २

"अरे पुत्र! सिन्धुराजकी राजनीतिसे भी कई लोग बिलकुल असन्तुष्ट हैं, वे सिंधुराजके कष्टके समयकी प्रतीक्षा करते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि तू साधनसामग्री इकट्ठी करके अपनी स्वतंत्रता पुनः स्थापित करनेके लिये यत्न करेगा, तो वे असन्तुष्ट लोगभी उठेंगे, इससे तेरा लाभ अवश्य होगा। उनके साथ सन्धि करके यदि तू पर्वतों और कीलोंका आश्रय करेगा, और योग्य समयकी प्रतीक्षा करेगा, तो तुम्हें अवश्य यश प्राप्त होगा। वह तुम्हारा शत्रु सिंधुराज कोई जरामृत्युसे रहित नहीं है।" अर्थात् वह कभी न कभी नष्ट होगा ही, इसलिये उसके कष्टके अवसरसे लाभ लेनेका यत्न तू अवश्य कर। अपनी स्वाधीनता पुनः प्राप्त करनेवालोंको ऐसा प्रयत्न करना योग्य है।

दुःख न कर।

अपनी बुरी अवस्थाके कारण रोते बैठना योग्य नहीं है। देखिये इस विषयमें विदुलादेवी क्या कहती है—

पुत्र नात्मावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे।
अमर्षेणैव चाप्यर्था नारब्धव्याः सुबालिशैः ॥ २५ ॥
जय० अ० ३

"अरे पुत्र! असमृद्धि अर्थात् विपत्ति प्राप्त होनेपर भी अपने आपके विषयमें शोक करते रहना योग्य नहीं है। धन न होनेपर भी प्राप्त होता है और होनेपर भी नष्ट होता है। इसलिये क्रोधी और दुःखी बनकर धनप्राप्तिके उपायोंका अवलंबन करना योग्य नहीं है।" परंतु मनकी शान्तिवृत्ति के साथ अपने यशके लिये प्रयत्न करना चाहिये। तभी उन्नति होगी। दुःख करते बैठनेसे कुछभी लाभ नहीं होगा।

शत्रुपर विश्वास न कर।

शत्रु मीठे वचन बोलता ही रहेगा, परंतु उन्नति चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि, वह शत्रुके मीठे वचनोंपर कभी विश्वास न करे, इस विषयमें विदुलादेवीका स्पष्ट उपदेश देखिये—

शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति।
अतः संभाव्यमेवैतद्यद्राज्यं प्राप्नुयादिति॥ ४०॥
जय० अ० ३

"शत्रुको अपने देशमें घुसनेके लिये सहायता करके जो उसपर विश्वास करता है और मानता है कि शत्रुही स्वयं अपना राज्य वापस देगा और मैं फिर शत्रुकी कृपासे अपने राज्यका स्वामी बनूंगा, तो वह निःसंन्देह भ्रमही है।" ऐसा कभी न होगा। कोई शत्रु ऐसा नहीं करता। शत्रु मीठे वचन इसीलिये बोलता रहता है कि, असन्तुष्ट लोग अपना राज्य वापस लेनेका प्रयत्न न करें, अतः शत्रुपर विश्वास रखना कदापि उचित नहीं है।

शत्रुकी कुमारिकाओंसे विवाह न कर।

शत्रुदेशकी कुमारिकाओंसे प्रेमसंबंध करना अथवा उनसे शादी करना सर्वथा अनुचित है, इसविषयमें विदुला राणीका वचन सदा स्मरण रखना योग्य है—

हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघ स्वार्थैर्यथा पुरा।
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः॥ ३२॥
जय० अ० २

"अपने देशकी कुमारिका के साथ प्रेम कर और उनसेही पूर्ववत् संतुष्टता प्राप्त कर। कदापि तुम्हारा शत्रुदेश जो सिंधुदेश है, उस देश की कुमारिकाओंके प्रेमके वशमें न हो जाओ।" विशेष कर परतंत्र देशके पुरुषोंको उचित है कि वे कदापि अपने देशको पराधीन करनेवाले देशकी कुमारिकाओंसे प्रेम न करें। इसका कारण यह है कि, परतंत्र देशवालोंको अपनी स्वाधीनताके लिये कभी न कभी शत्रुदेशोंसे लडना ही होगा उस समय उस देशकी स्त्रियां शत्रुको मदत करेंगी, या अपनेको सहायता करेंगी, इसका नियम नहीं है। अतः पराधीन देशके पुरुषोंको शत्रुदेशकी कन्याओंसे प्रेम करना कदापि उचित नहीं है।

दारिद्र्यही दुःख है।

नातः पापीयसीं कांचिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत्।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते॥ १२॥
पतिपुत्रवधादेतत्परमं दुःखमब्रवीत्।
दारिद्र्यमिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत्॥ १३॥
जय० अ० २

"शंवर ऋषिका मत है कि दोपहरके भोजनकी चिन्ता उत्पन्न होने योग्य विपत्ति प्राप्त होना यह अत्यंत पापपूर्ण अवस्था है। इससे अधिक पापी अवस्था दूसरी नहीं है। पति और पुत्रके मरणसे भी दारिद्र्य बडा दुःखदायी है। जिसको दरिद्रता कहते हैं,वह एक प्रकारका मरण ही है।" राष्ट्रीय परतंत्रतासे इस प्रकारकी दरिद्रता प्राप्त होती है, इस-लिये राष्ट्रीय पराधीनता सबसे अधिक कष्टप्रद है। देखिये—

राष्ट्रीय पारतंत्र्यसे कष्ट।

अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात्प्रवासिताः।
सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिंचनाः ॥ २८ ॥
जय० अ० १

"जिसके हाथसे स्वराज्य नष्ट होता है अर्थात् जो राष्ट्र पराधीन होता है, और जो लोग दूसरेके अंकित हो जाते हैं, वे (अकिंचनाः) निर्धन होते हैं, (स्थानभ्रष्टाः) अपने अधिकारसे भ्रष्ट होते हैं, (हीनाः) दीन, हीन, सब उपभोगोंसे हीन और सब आनंदोंसे हीन होते हैं, (अ-वृत्तिः) उपजीविका का साधन उनके लिये नहीं होता है, इतनाही नहीं अपितु वे अपनेही देशसे निकाले जाते हैं।" राष्ट्रीय पराधीनतासे कितनी हानि होती है, देखिये। हरएक पराधीन राष्ट्रकी यह अवस्था होती है। इसलिये कोई भी परतंत्र राष्ट्र कभी सुखभोग नहीं भोग सकता। इसी कारण हरएकको अपनी स्वाधीनता सुरक्षित करना चाहिये और पराधीनता दूर करनेका ही यत्न करना चाहिये। कभी पराधीनतामें संतुष्ट नहीं होना चाहिये। देखिये—

अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः ॥ ९ ॥
जय० अ० ३

"बडी अविद्या है जिसमें जनता फंसी है," इस कारण प्रजाजनोंको पराधीनतामें भी सुख है ऐसा प्रतीत होने लगता है, परंतु वह बडा भारी अज्ञान है। स्वाधीनता ही सुखकी जननी है और पराधीनता दुःखकी खान है। इस कारण हरएकको उचित है कि वह राष्ट्रीय स्वाधीनताके लिये प्रबल पुरुषार्थ करे और स्वकीय राष्ट्रका उत्कर्ष करे। इस उद्देश्यसे विदुला देवी कहती है—

स समीक्ष्य क्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः।
अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे ॥
असंभावितरूपस्त्वमानृशंस्यं करिष्यसि ॥ ६ ॥

तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि सञ्जय।
खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ॥ ७ ॥
जय० अ० ३

" अपनी स्वाधीनता प्राप्त करनेका समय अब प्राप्त हुआ है। यदि तू इस समय योग्य कार्य न करेगा, और स्वाधीनताके लिये यत्न न करेगा, तो तू स्वयं अपमानित होकर अपनी ही भयानक हानि करेगा। तू इस प्रकार यशकी हानि करता है इसलिये मैं यह चेतावनीकी बात तुझे कहती हूं। यदि मैं इस प्रकार तुम्हें चेतावनी न दूंगी, तो मेरा वात्सल्य गधीकी प्रीतिके समान निरर्थक सिद्ध होगा।" इसी लिये विदुलाने अपने पुत्र-को बडे कठोर शब्दोंद्वारा उत्तेजित किया और स्वराज्यकी प्राप्ति करनेके लिये प्रेरित किया। प्राचीन कालकी विदुषी स्त्रियें इसी प्रकार अपने पुत्रोंको सन्मार्गपर लाती थीं, और पुरुषार्थके लिये प्रेरित करती थीं।

प्रयत्नकी दिशा।

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः।
ये त्वादृतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान्व्रजन्तु नः ॥ ४० ॥
जय० अ० १

"आजका दिन किस प्रकार गुजारें यह विचार शत्रुके लोगोंमें रहे, अर्थात शत्रुकी ऐसी विपन्न दशा होवे; और अपने लोग आदरकी अवस्थाको प्राप्त हों" साधारण मनुष्य इस प्रकारकी इच्छासे कार्य करें, तब उनको कार्य करनेकी चेतना प्रबलतासे होती है। मुख्य बात अपनी उन्नतिके लिये निश्चयपूर्वक प्रयत्न करनेकी है। शत्रुका नाश करनेकी इच्छासे प्रयत्न किया, अथवा अपनी उन्नत्तिके लिये प्रयत्न किया, तो भी प्रयत्न स्वयं करना चाहिये। अपने प्रयत्नसे ही अपनी उन्नति होनी चाहिये। कई कहते हैं कि पुरुषार्थ करनेपर फल अवश्य मिलता है ऐसा नियम नहीं है, किसी समय मिलता है और किसी समय नहीं मिलता। ऐसा होनेपर भी प्रयत्न तो अवश्यही करना चाहिये, इसलिये कहा है—

सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता।
अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च ॥ २६ ॥
अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते।
ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ॥ २७ ॥

अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा।
यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता।
नुदेद्वृद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज ॥ २८ ॥

जय० अ० ३

" कर्म करनेसे फल होगा अथवा न होगा, यह संदेह ठीक है, परंतु प्रयत्न न करने पर लाभ निःसन्देह नहीं होगा, अर्थात् पुरुषार्थ न करनेपर लाभ की संभावना भी नहीं है। परंतु पुरुषार्थ करनेपर लाभ कदाचित होगा, कदाचित न होगा, यह शंका होनेपर भी कदाचित लाभ होने की संभावना होती ही है। इसलिये प्रयत्न न करनेकी अपेक्षा प्रयत्न करना अधिक लाभदायक है। " इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिये विदुला कहती है—

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥ २९ ॥

" उठना चाहिये, जागते रहना चाहिये, योजनापूर्वक उन्नतिके कर्मोंमें लगना चाहिये, और यश अवश्य ही मिलेगा ऐसा मनका निश्चय करके दुःख न करते हुए सतत प्रयत्न करना चाहिये। " यह उन्नति के लिये पुरुषार्थ करनेका नियम है। जो इसकी पालना करेंगे, वे यशस्वी होंगे और जो नहीं पालना करेंगे, वे पीछे पडे रहेंगे। इस प्रकार विचार करके विदुला अपने पुत्रसे कहती है—

मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह।
प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक ॥ ३० ॥
अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥ ३१ ॥
निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च।
अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥ ३२ ॥
पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहार्हसि।

"मंगल चिन्होंको आगे करके और ब्राह्मणोंके साथ देवतोंका आदर करके जो राजा अपनी उन्नतिके लिये पुरुषार्थ करता है उसकी वृद्धि निःसंदेह होती है। जिस प्रकार सूर्य पूर्व दिशा को प्राप्त होता है, उस प्रकार उसको यश मिलता है। इसलिये हे पुत्र! तू भी उस प्रकार उत्साहपूर्वक प्रयत्न कर, तू पुरुषार्थ करेगा, तो अवश्य यशस्वी होगा।"

लोगोंको वश करनेका उपाय ।

जनता की अनुकूलता होनेके विना राष्ट्रीय उन्नति हो नहीं सकती। इसलिये विदुला देवी अपने पुत्रको कहती है कि, इस निम्नलिखित प्रकार मनुष्योंको अपने अनुकूल कर और स्वराज्यको प्राप्त कर । यह उपदेश मनन करने योग्य है, देखिये—

क्रुद्धांल्लुब्धान्परिक्षीणानवलिप्तान्विमानितान् ।
स्पर्धिनश्चैव ये केचित्तान्युक्त उपधारय ॥ ३३ ॥
एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ।
महावेग इवोद्भूतो मातरिश्वा बलाहकान् ॥ ३४ ॥
तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्पोत्थायी प्रियंवदः ।
ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

जय० अ० ३

"लोगोंमें कई लोग तो क्रोधी होते हैं, कई लोभी, कई क्षीण अर्थात् निर्धन आदि होते हैं, कई घमंडी होते हैं और कई अपमानित होते हैं । इन सबको युक्तिसे मिलाना चाहिये । अर्थात् क्रोधियोंका क्रोध शमन करना चाहिये, लोभियोंको कुछ प्रलोभन देना चाहिये, क्षीण हुओंको कुछ धन आदि देकर समर्थ बनाना चाहिये, जो घमंडी हों उनको भी व्यवस्थासे संमानित करना और जो अपमानित हुए हों उनका आदर करना चाहिये । इस प्रकार योग्य व्यवहार करनेसे सब लोग अनुकूल होंगे और तुम अपना गया हुआ राज्य प्राप्त कर सकोगे । इस प्रकार योग्य व्यवहार करनेसे सब कार्यकर्ता लोग तेरे अनुगामी होंगे और वेगवान वायु मेघोंको हटा देनेके समान तू अपने शत्रुओंको भगा देनेमें समर्थ होगा । नौकरोंका वेतन योग्य समयपर देते रहो, उनके साथ मीठा भाषण करो और योग्य समयपर उठकर अपना कार्य करो, तथा शत्रुपर चढाई भी योग्य समय देखकर ही करो । यदि तू ऐसा कार्य करेगा, तो वे सब लोक तुझे अनुकूल होंगे और तुझे अग्रभागमें रखकर तेरा हित करनेमें तत्पर होंगे ।" इसलिये—

पुरुषार्थ कर ।

एभ्यो निकृतिपापेभ्यो प्रमुञ्चात्मानमात्मना ।
आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम् ॥ ३४ ॥

जय० अ० १

" तू इन आलस आदि पाप अवस्थाओंसे अपने आपको छुडाओ और लोहेका हृदय बनाकर अपना गया हुआ स्वराज्य प्राप्त करो। " यदि तू स्वयं अपने उद्धार के लिये प्रयत्न न करेगा, तो कोई दूसरा तुह्मारा उद्धार नहीं करेगा। स्वराज्यके विषय में किस रीतिसे प्रयत्न करना चाहिये, इस विषयमें विदुलाका उपदेश स्मरण रखनेयोग्य है, वह उपदेश अब देखिये—

नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान्।
सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥ २५ ॥
यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद्यशः।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६ ॥
त्यक्त्वात्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः।
अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २७ ॥
जय० अ० २

" युद्धमें खडा होकर शत्रुको अपना नाम सुनाकर, शत्रुओंको वेगसे आह्वान देकर, शत्रुसेनाका नाश करके और शत्रुके प्रमुख वीरोंका नाश करके, जब उत्तम युद्धसे वीर वडा यश प्राप्त करता है, तभी इसके शत्रु त्रस्त होते हैं और इसके सन्मुख नम्रभी होते हैं। जो पुरुष साधारण होते हैं, वे युद्धमें अपने आपकी रक्षा नहीं करते, वे दक्ष और शूर वीरको युद्धमें प्राप्त होकर परास्त होते हुए अपनी सब समृद्धि उसको समर्पण करते हैं। इसलिये तू युद्धमें दक्ष रहकर अपने शौर्यकी पराकाष्ठा कर और शत्रुका पराभव करके यश और समृद्धि प्राप्त कर। " तथा और देख—

राज्यं चाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा।
न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २८ ॥
स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाऽप्यमृतोपमम्।
रुद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवारिषु ॥ २९ ॥
जहि शत्रून्रणे राजन्स्वधर्ममनुपालय।
मा त्वादृशं सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धनम् ॥ ३० ॥
जय० अ० २

" उत्तम लोगोंकी नीति यह है कि वे चाहे राज्य प्राप्त होवे अथवा चाहे जीवित ही चला जावे, हाथमें आये हुए शत्रुको शेष नहीं रहने देते। राज्य यह स्वर्गद्वारके समान है अथवा अमृत के समान है। इसलिये शत्रुओंके ऊपर जलती हुई आगके

समान हमला कर, जिससे शत्रु परास्त होवे और तुम्हारा विजय होवे। अपने क्षात्रधर्मका स्मरण करके युद्धमें शत्रुका नाश कर। शत्रुका भय बढानेवाला तू दीन बना हुआ मेरे सन्मुख न रह ॥" इस प्रकार उपदेश विदुला देवीने अपने पुत्रको किया है। इसी विषयमें देखिये—

अप्यहेरारुजन्दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः ॥ १० ॥
अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन्।
विनदन्वाथवा तूष्णीं व्योम्नीवापरिशङ्कितः ॥ ११ ॥

जय० अ० १

"अरे पुत्र ! यदि तू पराक्रम न करेगा तो सांपके मुखमें हाथ रख कर शीघ्र ही मर जा, नहीं तो जीवनके विषयमें संशय उत्पन्न होनेतक पराक्रम कर। दोनोंमें से एक कार्य तो अवश्य कर। देखो, जिस प्रकार श्येनपक्षी आकाशमें घूमता हुआ, शत्रुका छिद्र देखता है और वहीं पर ही हमला करता है, उसी प्रकार तू भी शत्रूका छिद्र देख और उसमें हमला करके यश प्राप्त कर।" इस प्रकार चुपचाप बैठनेसे तुम्हारा क्या बनेगा ! देखो—

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाजिं यावदुत्तमम्।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते ॥ १६ ॥
उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १८ ॥
शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता।
विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत्कथंचन ॥ २० ॥
उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन्।
कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः ॥
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि ॥ २१ ॥
मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्।
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ॥ ३१ ॥
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ॥ १५ ॥

जय० अ० १

"जहांतक होसके वहांतक उत्तम कर्म करके, शत्रुके साथ घनघोर युद्ध करके मनुष्य

धर्मके ऋणसे मुक्त हो सकता है। इसलिये अपने आत्माकी निन्दा कदापि करना योग्य नहीं है। अरे पुत्र ! धर्मको अपने सन्मुख रखते हुए या तो पराक्रम कर अथवा मर जा। यदि इसमेंसे कुछभी न करना है तो तूं जीवित क्यों रहा है, ऐसे पुरुषार्थहीन जीवनसे-भला क्या लाभ हो सकता है। उद्योग करके धुराको उठा, अर्थात् कार्यका नेतृत्व अपने हाथमें पकड, और अपार पौरुष करके दिखा। और अपने पराक्रमसे अपने गिरे हुए कुलको ऊपर उठा। यह समझ कि यह कुलका अधःपात तुम्हारे लिये ही हुआ है, इसलिये तुम्हें ही इसके उद्धार का यत्न करना चाहिये। अरे पुत्र ! अग्निके समान जलता रह, शत्रुओंका नाश कर, शत्रुओंके सिरपर घडीभर तो अच्छी प्रकार जल। जो अग्नि जलती नहीं और जिससे धूवां ही होता रहता है, उससे क्या लाभ होगा ? इस-लिये तू धूवां उत्पन्न करनेवाली अग्निके समान न बन, परंतु प्रदीप्त होकर उत्तम अग्निके समान जलता रह। क्षणभर जलना अच्छा है, परंतु बहुत देरतक धूवां उत्पन्न करना अच्छा नहीं है।" जो अपना पौरुष इस प्रकार प्रकाशित करता है, वही इस जगत्में यशका भागी होता है। और देख—

कल्याणाय धुरं वह ॥ ६ ॥
मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७ ॥
जय० अ० १

"हे पुत्र ! तू अपना कल्याण करनेके लिये आगे बढ। अपने आपका स्वयंही अपमान न कर, अल्पमें संतुष्ट न हो। मन उत्तम प्रकारके कल्याणके विचारोंसे युक्त करके मत डरता हुआ, तू अपने शत्रुओंको परास्त कर।" क्योंकि—

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा।
जनान्योऽभिभवत्यन्यान्कर्मणा हि स वै पुमान् ॥ २४ ॥
जय० अ० १

"अध्ययन, तप, संपत्ति, पराक्रम आदिसे जो अन्योंसे बढकर होता है, वही पुत्र कहलाने योग्य होता है।"

पुरुषका लक्षण।

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ॥ ३२ ॥
परं विषहते यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ ३५ ॥
जय० अ० १

"जो शत्रुके अपराधकी क्षमा नहीं करता, और जो शत्रुसे क्रुद्ध होता है वही पुरुष है। (परं विषहते) शत्रुको जो परास्त करता है वह पुरुष कहलाता है।" ऐसे पुरुषके पराक्रमसे सब लोग आनंदित होते हैं, इसविषयमें देखिये—

> शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः।
> दिष्टभावं गतस्यापि विषये मोदते प्रजा ॥ ३९ ॥
> य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम्।
> अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३८ ॥
>
> जय० अ० १

"जो शूर, पराक्रमी, शेरके समान प्रतापी होता है वह मर जानेपर भी उसकी प्रजा उसकी मृत्युके पश्चात् सुखसे रहती है। जो अपना सुखका विचार छोडकर धनप्राप्तिकी इच्छा करता है वह मंत्रियोंका हर्ष निःसंदेह बढाता है।" तथा—

> यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय।
> पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४३ ॥
> यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम्।
> त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥ ४४ ॥
> स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
> स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ ४५ ॥
>
> जय० अ० १

> अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः।
> कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान्संजीवयस्व नः ॥ २१ ॥
>
> जय० अ० २

"हे पुत्र संजय! जिसप्रकार परिपक्व फलोंसे युक्त वृक्षके आश्रयसे अनेक पक्षि-गण आनंदसे रहते हैं, उस प्रकार जिसके आश्रयसे सब लोग रहते हैं, उसी पुरुषका जीवन सार्थ हुआ। जिस शूर पुरुषके पराक्रमोंसे सब बांधव गण सुखी होते हैं, जिस-प्रकार इन्द्रके पराक्रमसे देव सुखी होते हैं, उसीका जीवन उत्तम करके समझना चाहिये। अपने बाहुओंके बलका आश्रय करके जो वीर महान पराक्रम करके श्रेष्ठ होता है, वह इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें शुभ गतिको प्राप्त करता है। हे पुत्र! अपार समुद्रमें पार दिखानेवाला, जहां नौका नहीं है, वहां नौकाके समान तैरानेवाला, और जहां

आश्रय नहीं है, वहां आश्रय देनेवाला होकर मरे हुओंको संजीवित कर। अर्थात् अपने पुरुषार्थके द्वारा सब अन्य लोगोंमें पुरुषार्थी जीवन उत्पन्न कर।

जय इतिहास का मनन।

इस समयतक जय इतिहास का मनन किया। जो पाठक इस विदुलादेवीके बोधका अच्छी प्रकार मनन करेंगे, वे ही जान सकते हैं कि इसमें तेजस्विता कितनी है। यदि इस प्रकारका उपदेश विद्यार्थी पढेंगे तो उनके अन्तःकरणमें आत्मविश्वासयुक्त तेज उत्पन्न होगा यदि स्त्रियां इसका पाठ करेंगी, तो उनके अंदर वीर पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति आ-सकती है, अर्थात् उनके अन्दर जो वीरताके संस्कार होंगे, उनसे होनेवाली संतानपर भी वेही संस्कार निःसंदेह हो सकते हैं। इसलिये श्रेष्ठ लोगोंका कहना है कि यह जय इतिहास गर्भवती स्त्रियोंको अवश्यमेव पढना अथवा सुनाना चाहिये। गर्भधारण करने-की अवस्थामें इस जय इतिहासके प्रभावशाली संस्कार गर्भवती स्त्रीके मनपर पडे, तो उनके हितकारक परिणाम गर्भपर अवश्यही होंगे। इसलिये जो लोग वीर संतान पैदा करनेके इच्छुक हैं, वे इसका पाठ करें और स्त्रियोंसे भी इसका पाठ करावें। घरके अन्य लोगभी इसका श्रवण मनन और विचार करें, जिससे घरका वायुमंडल वीरतायुक्त बने और अपने परिवारमें कोई भी स्त्री पुरुष वीरत्वहीन न बने।

जय इतिहास पढने और सुननेका जो फल इस लेखके प्रारंभमें वर्णन किया है वह फल निःसंदेह पढने और सुननेवालोंको होगा, ऐसा हमारा निश्चय है। वीर पुरुषोंके घरोंमें येही विचार जीवित और जाग्रत रहने चाहिये। और जहां ये उत्साही विचार जाग्रत रहेंगे, वहां वीर पुरुष अवश्य होंगे।

यह जय इतिहास पाण्डवोंके भी कई शताब्दियोंके पूर्व हुआ था और जब कोई वीर उत्साहहीन होता था, उस समय उसको धीरज देनेके लिये यह इतिहास कहा करते थे। इसी प्रकार पाण्डवोंको धीरज देनेके लिये कुन्ती देवीने यह इतिहास कहा था, और इसका परिणाम भी पाण्डवोंपर योग्यही हुआ। जो पाण्डव पहिले युद्धके लिये सिद्ध न थे, वे इसके सुननेपर सिद्ध हुए। इस घटनाका विचार करनेपर भी निःसंदेह कहना पडता है कि, इस जय इतिहासका परिणाम शौर्य बढानेके कार्यमें बहुत उत्तम हुआ है।

हम भी जिस समय इसका पाठ करते हैं, उस समय अन्दरकी उत्साहशक्ति जाग्रत होनेका अनुभव होता है, क्यों कि इसमें उद्बोधक विचार प्रारम्भसे अन्ततक भरे हैं। इसलिये जगत्के व्यवहार के अन्दर यश चाहनेवाले लोग इसका अवश्य पाठ करें।

आर्य-स्त्री-शिक्षा।

इस जय इतिहासमें उपदेश देनेवाली एक स्त्री है। यह देखनेसे प्राचीन आर्यस्त्रियों के विषयका आदर बढता है। जिस समय विदुला जैसी स्त्रियां आर्योंमें होंगी उस समय उनका विजय हुआ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिन स्त्रियोंके रोमरोममें स्वजातीका उत्कर्ष, आत्मसंमान और विजयके भाव होंगे, वे स्त्रियां समाजका उत्कर्ष करनेका कार्य अवश्य करेंगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। विदुला देवीके समय उत्तम प्रकारकी स्त्रीशिक्षा आर्योंमें थी, इसलिये इस प्रकारकी स्त्रियां उस समय अपने समाज को जाग्रत करनेका कार्य करनेकेलिये समर्थ होती थीं। यह स्त्रीशिक्षा की महिमा है। जिस समय आर्यशिक्षा स्त्रियोंको प्राप्त होगी, उस समय ऐसी ही स्त्रियाँ होंगी और उनके दक्षतापूर्ण उपदेशसे सब जनता उत्तम प्रभावसे संपन्न होगी।

ईश्वर करे और ऐसी वीरशिक्षा हमारे राष्ट्रमें जाग्रत हो और सब देशवासी वीर-वृत्तीसे युक्त बनें।

[उद्योगपर्वमें अध्याय १३३—१३६ तक यह जय इतिहास है।]

जो राष्ट्र अपनी उन्नतिके लिये उद्योग करता है वही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर सकता है।

❀ ❀ ❀

अपने उद्धारके लिये स्वयं प्रयत्न करो। जितना प्रयत्न होगा, उतनाही स्वराज्य मिलेगा, कदापि अधिक नहीं मिलेगा।

श्लोक सूची।

१

कल्याणाय धुरं वह ॥ १ । ६ ॥

अपने कल्याण की प्राप्ति करनेके लिये अग्रभागका बोझ उठाओ।

२

निर्मन्युश्चाऽप्यसङ्ख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः ॥१।६॥

जो पुरुष क्रोध रहित, निरुत्साह तथा निर्बल साधनोंसे युक्त है वह गिनतीके योग्य भी नहीं समझा जाता।

३

माऽऽत्मानमवमन्यस्व, मैनमल्पेन बीभरः ॥ १ । ७ ॥

अपना अवमान कभी न कर और अल्प प्राप्तिसे संतुष्ट न हो।

४

मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥१।७॥

अपना मन कल्याणसाधक विचारोंसे युक्त कर, मत डर, और शत्रुका प्रतिकार कर।

५

उत्तिष्ठ, मा शेष्वैवं पराजितः ॥१।८॥

उत्तिष्ठ, मा स्वाप्सीः शत्रुकर्षितः ॥१।१२॥

उठ, इस प्रकार पराजित होकर मत सो जा।

६

अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमे ॥१।१०॥

अपने जीवित रहनेके विषयमें संदेह होनेतक पराक्रम कर।

७

अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन् ॥१।११॥

श्येनपक्षीके समान विशेष प्रकार परिभ्रमण करता हुआ तू शत्रुके छिद्रोंका अव-लोकन कर.

८

माऽस्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा॥१।१२॥

दीन दुर्बल होकर नाशको मत प्राप्त हो। अपने पुरुषार्थसे कीर्तिमान् बन।

९

मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माऽधो भूस्तिष्ठ गार्जितः॥१।१३॥

तू बीचमें, नीचे और हीन अवस्थामें न रह। गर्जना करता हुआ उच्च स्थानपर ठहर।

१०

अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि हि ज्वल॥१।१४॥

सूखी लकडीकी ज्वालाके समान घडीभर जलता रह।

११

मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः॥ १। १४॥

भूंस की अग्निके समान न जलता हुआ, केवल जीनेकी इच्छासे धूंवा उत्पन्न न कर।

१२

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्॥ १। १५॥

मा धूमाय, ज्वलात्यन्तम्॥ १। ३१॥

घडीभर अच्छी प्रकार जलना उत्तम है, परंतु बहुत देर तक धूवां उत्पन्न करना निरर्थक है।

१३

मा जनि खरो मृदुः॥ १। १५॥

अति तीक्ष्ण और अति नरम कभी न बन।

१४

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाऽऽजिं यावदुत्तमम्।

धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते॥ १। १६॥

मनुष्यके योग्य कर्म करके, शत्रुके साथ उत्तम युद्ध करके, जो अपने आपकी निंदा नहीं करता, वह धर्मके ऋणसे मुक्त होता है।

१५

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डितः।

आनन्तर्यं चारभते न प्राणानां धनायते॥ १। १७॥

लाभ होवे या न होवे बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता। प्राणोंकी पर्वाह न करते हुए अन्ततक पुरुषार्थ प्रयत्न करता रहता है।

१६

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम् ॥ १ । १८ ॥

पराक्रम कर अथवा मर जा।

१७

विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १ । १९ ॥

तेरे भोगोंका मूल नष्ट हो चुका है अब क्यों जीता है ?

१८

विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत्कथंचन ॥ १ । २० ॥

जडके समेत उखड जानेपर भी कभी उदास होना योग्य नहीं है।

१९

उद्यम्य धुरमुत्कर्षेत् ॥ १ । २१ ॥

उद्योग करके कार्यके अग्रभाग का उत्कर्ष करे।

२०

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा।
जनान्योऽभिभवत्यन्यान्कर्मणा हि स वै पुमान् ॥ १ । २४ ॥

विद्या, तप, धन, पराक्रम इनके कारण जो अन्योंसे बढकर होता है, उसीको पुरुष कहते हैं।

२१

न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि।
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ॥ १ । २५ ॥

नीच, हीन, यश घटानेवाली, दुःखदायी, हीन मनुष्यके लिये उचित भीक मांगने-की कापालिक वृत्तिको धारण करना उचित नहीं है।

२२

अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात्प्रवासिताः।
सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिंचनाः॥१।२८॥

यदि हम अपने राष्ट्रसे दूर हुए तो हमें कोई भोग नहीं मिलेगा, कोई स्थान नहीं मिलेगा, हम निर्धन बनेंगे, और बेकार होकर विपत्तीमें पडेंगे।

२३

आक्रम्य जहि शात्रवान्॥१।३१॥

हमला करके शत्रुओंका नाश कर।

२४

ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम्॥१।३१॥

घडीभर अथवा क्षणभर शत्रुओंके सिर पर खडा होकर प्रकाशित हो।

२५

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी॥१।३२॥

यही पुरुष है जो अपमानको न सहनेवाला और क्षमा न करनेवाला होता है।

२६

क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्॥१।३२॥

क्षमा करनेवाला और अपमान सहन करनेवाला न तो स्त्री है और न पुरुष है।

२७

सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथाऽनुक्रोश एव च।

अनुत्थानभये चोभे ... ... ॥१।३३॥

सन्तोष, दया, चढाई न करना और डरना ये चार संपत्तिका नाश करते हैं।

२८

निरीहो नाऽश्नुते महत्॥१।३३॥

निरिच्छ मनुष्य महत्पदको प्राप्त नहीं कर सकता।

२९

आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम् ॥ १ । ३४ ॥

लोहेका हृदय बना कर अपने (स्वराज्य) को प्राप्त कर।

३०

परं विषहते यस्मात् तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ १ । ३५ ॥

शत्रुको पराभूत करनेवालेको ही पुरुष कहते हैं।

३१

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः ॥ १ । ४० ॥

शत्रुओंको भूखे लोगोंकी अवस्था प्राप्त हो।

३२

ये त्वादृतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान्व्रजन्तु नः ॥ १ । ४० ॥

आदरके स्थान हमारे सुहृदोंको प्राप्त हो।

३३

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि…… ।
तस्य जीवनमर्थवत् ॥ १ । ४३ ॥

जिसका आश्रय करके सब मनुष्य अथवा प्राणी सुखसे जीवित रहते हैं, उसका जीवन सार्थक है।

३४

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः ।
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ १ । ४५ ॥

अपने बाहुबलका आश्रय करके जो मनुष्य उत्तम जीवन प्राप्त करता है, वह इस जगत्में कीर्ति व परलोकमें शुभगतिको प्राप्त होता है।

३५

दारिद्र्यमिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ २ । १३ ॥

दारिद्र्य केवल मरणही है।

३६

कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान्संजीवयस्व नः ॥ २ । २१ ॥

जहां स्थान नहीं वहां स्थान कर, मरे हुओंके सदृश बने हुए हम लोकोंको जिला।

३७

एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २ । २२ ॥

शत्रुको वध करनेमात्रसे शूर पुरुष कीर्तिको प्राप्त होता है।

३८

न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २ । २८

शत्रु हाथमें आनेपर उत्तम लोग उसको शेष रहने नहीं देते।

३९

न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमर्हसि ॥ २ । ३५ ॥

तू शत्रुका सेवक होकर जीवित रहने योग्य नहीं हो।

४०

भयाद्वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ॥ २ । ३८

भयके कारण अथवा जीविकाके निमित्त किसी मनुष्यके सन्मुख नम्र न होवे।

४१

सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम् ॥ ३ । ८

सज्जनोंसे निंदित और मुर्खोंद्वारा सेवित बुरे मार्गका त्याग कर।

४२

अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च।
सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ॥ ३ । १२ ॥

जो नीच पुरुष निन्दित कर्म करते हैं और सत्कर्म करते नहीं, वे इहपरलोकमें सुखको नहीं प्राप्त होते।

४३

इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति ॥ ३ । १७

ज्ञानी मनुष्य अप्रिय थोडाही चाहता है।

४४

नात्मावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ॥ ३ । २५

विपत्तियोंके कारण अपने आत्माका अपमान नहीं करना चाहिये।

४५

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ॥ ३ । २९

उन्नतिके कार्योंके लिये उठना चाहिये, जागना चाहिये, लगनसे कार्य करना चाहिये।

४६

धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ॥ ३ । ३८ ॥

धनी पुरुषके पासही मित्र आते हैं और उसीके आश्रयसे रहते हैं।

४७

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्यांचिदापदि ॥ ४ । १

कैसीभी आपत्ति आनेपर राजाको (या किसीको भी) डरना उचित नहीं है।

४८

अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥ ४ ।१

यदि डर भी गया हो, तो डरे हुएके समान वर्ताव न करे।

४९

कृत्वाऽसौम्यमिवाऽऽत्मानं जयायोत्तिष्ठ ॥ ४ । ८

अपने आपको उग्र बनाकर विजय करनेके लिये उठ।

जय इतिहास की विषयसूची।

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध जि० सातारा.